भूमध्यसागर का रणक्षेत्र

श्री विश्वदर्शी

में
के
वेग
।
द्या
ड़ाई
ारों
ोश

की
है
हमें
के

ने,

भूमध्यसागर का रणक्षेत्र



लेखक
श्री विश्वदर्शी



सम्पादक
रामगोपाल विद्यालंकार



प्रथमावृत्ति] सन् १९४१ ई० [मूल्य छः आना

प्रकाशक,
विजय पुस्तक भँडार,
श्रद्धानन्द बाज़ार,
दिल्ली।

❀❀❀

मुद्रक,
अर्जुन प्रिण्टिङ्ग प्रेस,
श्रद्धानन्द बाज़ार,
दिल्ली।

प्रारम्भिक-शब्द



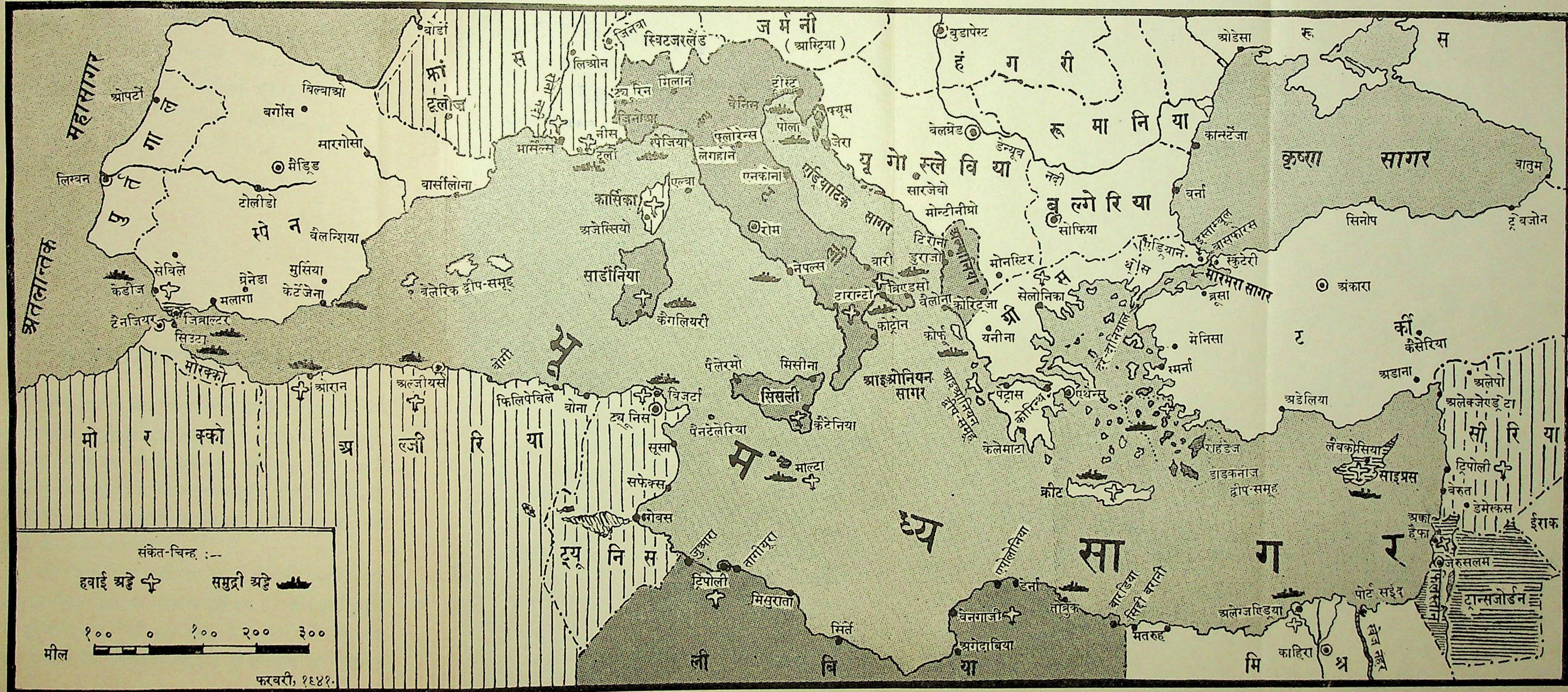
युद्ध-साहित्य-माला का प्रथम पुष्प पाठकों की सेवा में समर्पित है। इस माला का उद्देश्य हिन्दी पाठकों के लिये युद्ध के सम्बन्ध में सामयिक सामग्री उपस्थित करना है। युद्ध का वेग पूर्व और पश्चिम से खिंचकर दक्षिण की ओर बढ़ रहा है। पश्चिम की ओर युद्ध की प्रगति को ब्रिटिश-चैनल ने रोक दिया है और पूर्व की ओर रूस-जर्मनी-समझौते के कारण लड़ाई प्रारम्भ ही नहीं हुई, फलतः युद्ध का ज़ोर भूमध्यसागर के चारों ओर फैल रहा है, यही सोचकर इस पुस्तकमाला का श्रीगणेश भूमध्यसागर से ही किया गया है।

इस माला के आगामी पुष्पों को भी वर्तमान पुष्प की भांति उपयोगी बनाने का यत्न किया जायेगा। मुझे आशा है कि हिन्दी के पाठक हमारे इस उद्योग का स्वागत करेंगे और हमें इसी प्रकार के साहित्य को सस्ते दामों पर प्रकाशित करने के लिये उत्साहित करेंगे।

इन्द्र विद्यावाचस्पति,
व्यवस्थापक।

विषय-सूची

भूमध्यसागर का रणक्षेत्र



१

भूमध्यसागर का महत्व

यूरोप, एशिया और अफ़रीका के महाद्वीप संसार के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यूरोपियन अन्वेषकों द्वारा अमेरिका के पता लगाये जाने तक अधिकतर राष्ट्र और जातियां इन्हीं महाद्वीपों में केन्द्रित थीं। राष्ट्रों और जातियों के इतिहास में इन तीन महाद्वीपों का कितना महत्व रहा है, यह सरलता से समझा जा सकता है।

यदि हम ध्यान से नक्शे पर देखेंगे तो हमें मालूम होगा कि यूरोप और एशिया के महाद्वीप जुड़े हुए हैं और इन्हें इसीलिये यूरेशिया नाम से भी कहा जाता है। नक्शे में यह भी मालूम होता है कि एशिया का महाद्वीप भी अफ़रीका के महाद्वीप

से जुड़ा हुआ चला गया है। इसी स्थलीय भाग को काट कर स्वेज की नहर निकाली गई है।

प्रश्न होगा कि यदि तीनों महाद्वीप जुड़े ही हुए हैं तो ये एक महाद्वीप के रूप में क्यों नहीं गिने जाते? इस के दो कारण हैं—प्रथम तो यह कि यह तीनों महाद्वीप अलग अलग इतने विस्तृत हैं कि इनका भागों में बंट जाना स्वाभाविक था। दूसरी बात यह है कि भूमध्यसागर नाम का समुद्र इन तीनों महाद्वीपों के बीच में आकर इनमें विभिन्नता पैदा कर देता है।

यदि किसी तरह भूमध्यसागर इन महाद्वीपों के बीच में न होता तो इन महाद्वीपों की संज्ञा संभवतः बदल जाती। यह भूमध्यसागर ही है, जिसने यूरोप, एशिया और अफ़रीका को एक दूसरे से अलग भी किया है और जोड़ा भी है।

प्राचीन काल में भूमध्यसागर के किनारे के देशों में प्रायः एक सा इतिहास ही विकास को प्राप्त हुआ और इसी के आस-पास यूरोप, पश्चिमी एशिया और मिश्र की सभ्यतायें फली फूलीं। पुराने यूनान देश ने इसी भूमध्यसागर के किनारे के तीनों महाद्वीपों के टापुओं में अपने उपनिवेश बसाये थे। इसी भूमध्य-सागर के उपकूल पर ईसाइयत का शैशव व्यतीत हुआ और अरब लोग भी अपनी सभ्यता को भूमध्यसागर के किनारे पर सिसली के टापुओं से शुरू कर उत्तरी अफ़रीका के भूमध्यसागर-वर्ती किनारों को रौंदते हुए ठेठ स्पेन तक पहुंच गये थे और सात सौ साल तक वे अपने सिक्के को भूमध्यसागर के दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी किनारों पर ही चलाते रहे थे। ओटोमन

या उस्मानी तुर्क भी इसी भूमध्यसागर के पूर्वी हिस्से के तीन ओर बहुत समय तक अपना डङ्का बजाते रहे थे और भूमध्यसागर के किनारों पर ही प्रतापी रोमन-साम्राज्य फला फूला। इसी भूमध्यसागर के वक्षस्थल पर से भारतवर्ष और अन्य पूर्वी देशों की धन-धान्य से भरी हुई नौकाओं ने गुज़र कर वेनिस, जिनोआ और मार्सेल्स को ऐश्वर्य का केन्द्र बनाया था।

नैपोलियन बोनापार्ट भी इसी भूमध्यसागर की धन संपत्ति पर प्रभुत्व पाने के लिये, अंग्रेज़ों को मात देने पिरामिडों की भूमि (मिश्र) पर पहुंचा था। इसी भूमध्यसागर में ब्रिटिश प्रभुत्व को बेकार करने के लिये ही जर्मन कैसर विलियम द्वितीय ने बर्लिन-बगदाद-रेल की योजना बनाई थी। १९४० के युद्ध में इटली भी इसी सागर में कैदी की अपेक्षा स्वामी बनना चाहता है और इसे इटली की झील में परिवर्तित करने में लगा हुआ है।

आज इसी भूमध्यसागर के प्रभुत्व के लिए यूरोप में एक नये संग्राम का सूत्रपात हुआ है। ब्रिटेन अपने भूमध्यसागर के प्रभुत्व अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य की कुंजी को अपने पास रखना चाहता है। इटली भूमध्यसागर में अपनी कैदी सी स्थिति को सह नहीं सकता है, वह जर्मनी की सहायता से इस में परिवर्तन चाहता है। इंग्लैंड और इटली में वर्तमान युद्ध का यही मूल-कारण है।

२. भौगोलिक—यह तो हुआ भूमध्यसागर का महत्व। भूमध्यसागर क्या है? इसके चारों ओर कौन से देश हैं और उनका क्या महत्व है, अब हम इन प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

भूमध्यसागर यूरोप, एशिया और अफरीका के महाद्वीपों को एक दूसरे से अलग भी करता है और जोड़ता भी है, यह हम ऊपर कह आये हैं। इस भूमध्यसागर में पानी के रास्ते से प्रवेश करने के दो द्वार हैं, पहला जिब्राल्टर और दूसरी स्वेज़ की नहर। जिब्राल्टर भूमध्यसागर के पश्चिम में है, और स्वेज़ नहर पूरब में है, इसलिए हम भूमध्यसागर का पश्चिमी द्वार जिब्राल्टर को कहेंगे और पूर्वीय द्वार स्वेज़ नहर को। भूमध्यसागर में इन दोनों प्रवेश-द्वारों के अतिरिक्त एक और दर्रे दानियाल का जलमार्ग भी है, जिससे भूमध्यसागर में प्रवेश किया जा सकता है। इसे प्रवेश-द्वार कहने की जगह झरोखा कहना ठीक होगा, क्योंकि यह किसी बड़े महासागर में न जाकर एक क्षुद्र सागर में कई राष्ट्रों (रूस, रूमानिया, बल्गेरिया व टर्की) को बन्द कर देता है।

भूमध्यसागर नाम से ही इस सागर का महत्व प्रतीत होता है, जो सागर पुरानी दुनिया—एशिया, यूरोप और अफ्रीका का मध्यवर्ती हो, वह पृथ्वी का केन्द्रस्थान तो हुआ ही। इस भूमध्यसागर में, यदि हम रक्तसागर पार कर स्वेज़ के जलडमरू-मध्य में से गुज़रें, तो सब से पहिले मिश्र का ऐतिहासिक देश मिलता है। मिश्र पूर्व और पश्चिम के बीच का दरवाज़ा है और पुराने समय से पूर्व तथा पश्चिम की सभ्यताओं को मिलाने-वाली कड़ी रहा है। यह इस समय वैधानिक भाषा में स्वतन्त्र होता हुआ भी व्यवहार में ब्रिटिश साम्राज्य की सेना की छावनी है। मिश्र से यदि हम पश्चिम की ओर चलें तो रास्ते में

हमें क्रीट के टापू पर ब्रिटिश झंडा लहराता दीखता है। यह यूनान का टापू है, जिसपर इटली-ग्रीक युद्धमें ब्रिटिश सेनायें उतरी हैं। यहां से पश्चिम-दक्षिण की ओर चलने पर हमें ट्रिपोली अथवा लीबिया का रेतीला इटालियन उपनिवेश मिलता है। इस को पार करने पर हमें ट्यूनिस की इटालियन आबादी वाली फ्रेंच बस्ती के दर्शन होते हैं। ट्यूनिस से इटालियन पैर का तलवा सिसली भी अपनी झांकी दिखाता है, जिसके दक्षिण में जिब्राल्टर से स्वेज़ नहर की लगभग आधी दूरी में माल्टा का प्रसिद्ध ब्रिटिश हवाई और समुद्री अड्डा है। ट्यूनिस से आगे चलने पर अल्जीरिया का फ्रेंच उपनिवेश मिलता है, जहां से दक्षिण में होता हुआ संसार का सबसे बड़ा सहारा का रेगिस्तान हज़ारों मील के विस्तार में फैल गया है। अल्जीरिया से और पछांह में जाने पर मूर लोगों का मोरक्को देश मिलता है, जिस का उत्तरी लघु भाग स्पेन के पास है और दक्षिणी भाग फ्रांस के क़ब्ज़े में है-। स्पेनिश मोरक्को के पश्चिम में टैनज़ियर की अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती दिखाई देती है, जो अब स्पेन के अधिकार में चली गई है। टैनजियर अफ्रीका महाद्वीप का अन्तिम पड़ाव है। यूरोप में लंगर डालने से पहले देखिये, यह जिब्राल्टर का जल-डमरूमध्य है, जिसके दूसरी ओर जिब्राल्टर की चट्टान शत्रु-जहाज़ों को निगलने के लिये मुंह बाये खड़ी है।

जिब्राल्टर में पदार्पण के साथ यूरोप की भूमि के दर्शन भी हुए। जिब्राल्टर अब टापू बन गया है, मुख्य महाद्वीप की भूमि को एक नहर द्वारा काट दिया गया है। इस नहर को पार

कर हम स्पेन में पहुंच गये। स्पेन के किनारे से हम अब पूरब की ओर मुड़ जाते हैं। सबसे पहिले बैलेरिक द्वीप आते हैं, जिन पर स्पेन-गृहयुद्ध के दिनों में इटालियन सेनाओं ने अपना कब्ज़ा कर लिया था। बैलेरिक द्वीपों से उत्तर में चलने पर हम फ्रांस की भूमि देखते हैं, वही फ्रांस जो कभी ब्रिटेन का साथी था, अब शत्रु से परास्त होकर संकुचित सीमाओं में बन्द बैठा है। फ्रेंच बन्दरगाह मार्सेल्स और टुलों से होते हुए प्रसिद्ध फ्रेंच सम्राट् नैपोलियन की जन्मभूमि कार्सिका के पास पहुंच जाते हैं, जिसके लिये इटालियन कह रहे हैं कि यहां पर हमारी आबादी अधिक होने से हमारा कब्ज़ा होना चाहिये। कार्सिका के दक्षिण में सार्डिनिया का इटालियन द्वीप है।

कार्सिका से उत्तर में चलने पर जूते नुमा इटली के दर्शन होते हैं। भूमध्यसागर के असली समशीतोष्ण जलवायु का मज़ा लूटते हुए इटली के कटे-फटे किनारे से गुज़र कर हम इटली के पूर्वीय किनारे पर एड्रियाटिक सागर में पहुंच जाते हैं, जिसके उत्तर में ट्रीस्ट का पुराना आस्ट्रियन बन्दरगाह है, जिस पर गत महायुद्ध से इटली का क़ब्ज़ा है। एड्रियाटिक के पूर्वीय किनारे पर पुराने सर्वियाके, जो आजकल युगोस्लेविया कहलाता है, दर्शन होते हैं। आगे बढ़ने पर अल्बानिया का एकमात्र मुस्लिम जनसंख्या-प्रधान यूरोपियन देश है, जिस पर इटली का क़ब्ज़ा है। आगे विभिन्न आइओनियन द्वीपों से बने हुए यूरोपियनों के पुरातन गौरव का अवशेष छोटा सा यूनान (ग्रीस) है। ग्रीस के बाद एजियन सागर पार कर टर्की की भूमि आ जाती है। यूरोपियन

भूमि के कुस्तुन्तुनिया और बासफोरस के बन्दरगाह से कृष्णसागर और मारमरा सागर का जलसंयोजक बासफोरस दीखता है। दूसरी ओर मारमरा सागर और एजियन सागर का प्रसिद्ध जलसंयोजक दर्रे दानियाल दीखता है।

दर्रे दानियाल के बाद एशिया महाद्वीप की भूमि मिल जाती है। इस टर्की की भूमि के पश्चिम में डोडकनीज अर्थात् द्वादश द्वीप के १२ बड़े टापू तथा रोहडेज के टापू हैं, जिनपर इटली का आधिपत्य है। टर्की के दक्षिण में मैसोपोटामिया (ईराक) या सीरिया का फ्रेंच प्रदेश है। इसके पश्चिम में साइप्रस का ब्रिटिश टापू है, जहां अंग्रेजों का हवाई और समुद्री अड्डा है। सीरिया के दक्षिण में फिलस्तीन या पैलेस्टाइन की अरब-यहूदी झगड़े की भूमि आती है, जिसे पार कर फिर मिश्र राष्ट्र में प्रवेश हो जाता है। स्वेज के स्थलडमरूमध्य को स्वेज नहर द्वारा पार करने पर भूमध्यसागर की परिक्रमा हो जाती है।

३. ऐतिहासिक सिंहावलोकन—भूमध्यसागर के किनारे, जो सबसे पहली मानव सभ्यता फली फूली, वह नील की सभ्यता थी। ईसा से लगभग २८०० वर्ष पूर्व नील की घाटी में पहले पहल अमरता का सन्देश लेते हुए महान् पिरेमिडों (प्राचीन मिश्री सम्राटों की कबरें), स्फिंक्स (स्त्री के शिर और शेर के धड़ वाली विशाल मूर्ति), मन्दिर और ममी की रचना कर मिश्र के पुरातन मानव ने भूमध्यसागर की सब से प्राचीन सभ्यता का निर्माण किया था। मिश्र की भूमि के सामने उत्तर में क्रीट का

टापू है, यहां के नौसास शहर में ईसा से २००० वर्ष पहले मिनोयन सभ्यता कला-कौशल का वह नमूना तैयार कर रही थी, जिसके आधार पर यूरोप के कला कौशल का विकास हुआ। ईसा से २१०० वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया में बेबिलोनियन साम्राज्य बनता है, जो कि दो शताब्दी बाद हिट्टाइट लोगों द्वारा खत्म कर दिया जाता है।

नौसास की सभ्यता के सात सौ वर्ष बाद भूमध्यसागर के विभिन्न द्वीपों में फ्यूनीशियन बस्तियां बसीं। यह एशिया माइनर की समुद्र-यात्री जाति थी, और व्यापार की खोज में बड़ी दूर दूर तक धावा किया करती थी। इसके साहसिक नाविक जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य को पार कर इंग्लैंड तक भी पहुंचे थे, इन्होंने ही मार्सेल्स शहर बसाया था। इस समय पश्चिमी एशिया में असीरियन साम्राज्य चढ़ती पर था।

ईसा से २१०० वर्ष पहले भूमध्यसागर के पूर्वी छोर के उत्तरी किनारे पर यूनान की हेलेनिक सभ्यता विकास को प्राप्त कर रही थी। ये हेलेनिक यूनानी फैलते २ एशिया माइनर, दक्षिणी इटली, सिसली और दक्षिणी फ्रांस तक पहुंच जाते हैं। फ्यूनीशियन जाति ईसा से ८०० वर्ष पहले उत्तरी अफरीका में कार्थेज की स्थापना करती है, तो यूनानी लोग एथेन्स, स्पार्टा, थीवस और कोरिन्थ के नगर राज्यों की स्थापना करते हैं। इसके ४७ वर्ष बाद रोम के नगर का निर्माण हो चुका था।

इसी समय असीरियन लोग अपने साम्राज्य की स्थापना पूर्ण कर देते हैं। यह साम्राज्य एक शताब्दी बाद खत्म हो जाता

है। ईसा से लगभग पांच शताब्दी पहले उत्तरी अफ़रीका में कार्थेज महान् व्यापारिक केन्द्र बन बैठा था। इस समय भूमध्य-सागर में प्रधान शक्ति भी यही बना हुआ था। भूमध्यसागर के उत्तरी सिरे पर रोम का प्रजातन्त्र भी फल फूल रहा था।

ईसा से साढ़े पांच शताब्दी पहिले पश्चिमी एशिया में साइरस प्रथम ईरानी साम्राज्य का प्रारम्भ करता है। इसी वंश के दारा और जरेक्सीज यूनान जीतना चाहते हैं, परन्तु असफल होकर लौट जाते हैं।

साइरस से दो सौ साल बाद सन् ३३६ ई० पूर्व में, यूनान में सिकन्दर का अभ्युदय होता है, यह यूनान पश्चिमी एशिया और मिश्र में अपने राज्य को स्थापित करता है। पश्चिमी एशिया में साइरस का ईरानी साम्राज्य इस तरह खतम हो गया। सिकन्दर के मरने के बाद पश्चिमी एशिया में पार्थियन साम्राज्य स्थापित हो जाता है। आगे दो सौ साल तक रोम और कार्थेज की शक्तियों के बीच में तीन प्युनिक युद्ध होते हैं। जिनके अन्त में रोम द्वारा भूमध्यसागर की रानी कार्थेज को कुचल दिया जाता है। इस समय अलेग्जेण्ड्रिया यूनानी सभ्यता के एक महान् केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है, जो ३० ई० पूर्व में रोमन साम्राज्य का एक प्रान्त बन जाता है, ईसा से ५० साल पहले रोमन साम्राज्य पश्चिम में ब्रिटेन तक और पूर्वीय देशों में फैल चुका था। ईसवी शताब्दी में रोमन लोकतन्त्र साम्राज्यवाद के रूप में प्रवेश करता है, इसकी राजधानी रोम थी।

सन् ३०६ ई० में, रोमन सम्राट् कान्स्टेण्टाईन अपनी

राजधानी रोम से बिजैन्टियम ले जाता है, साथ ही राजधानी का नाम कुस्तुन्तुनिया (कान्स्टेण्टिनोपल) हो जाता है। रोमन-साम्राज्य ईसाई धर्म को राजधर्म के रूप में स्वीकार कर लेता है। इसके बाद रोमन-साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में बंट गया।

दो शताब्दी से भी कम समय में पश्चिमी रोमन-साम्राज्य बर्बरों और हूणों के आक्रमणों से तहस-नहस हो जाता है। दूसरी ओर पूर्वी रोमन साम्राज्य जैसे तैसे १४५३ ईसवी तक असाधारण रूप से लम्बा जीवन व्यतीत करता है।

पश्चिमी रोमन-साम्राज्य के ध्वंसावशेषों पर पवित्र रोमन-साम्राज्यों तथा विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों की शुरूआत यूरोप में होती है, तो उसी समय पश्चिमी एशिया में इस्लाम पैदा होकर शक्ति संग्रह कर लेता है। इस्लाम में दीक्षित होकर अरब लोग सातवीं शताब्दी में पूर्वी रोमन साम्राज्य (बिजैण्टाईन) को हरा कर फ़ारस, मिश्र, उत्तरी अफरीका को जीतते हुए आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में (सन् ७११) स्पेन विजय कर फ्रांस पर आक्रमण कर देते हैं, परन्तु फ्रांस में टूर्स की लड़ाई से अरबों की प्रगति रुक जाती है। इस समय यूरोप में पवित्र रोमन साम्राज्य की दुन्दुभि बज रही थी। अरबों के साम्राज्यों के विभिन्न फैले हुए भाग स्पेन, मिश्र आदि स्वतन्त्र होकर मुस्लिम राज्य स्थापित कर लेते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक स्पेन में अरबों के ग्रेनाडा जैसे राज्य कायम रहे। सन् १४९२ में स्पेन से अरबों की सल्तनत का खात्मा कर मूर लोग बाहर कर दिये जाते हैं।

चौदहवीं शताब्दी में पश्चिमी एशिया में एक नवीन शक्ति का अभ्युदय होता है, इसका नाम था—उस्मानी तुर्क। ये यूरोप में घुसकर बाल्कन राष्ट्रों को जीत लेते हैं और बहुत जल्दी ही ये सदियों से चले आ रहे बिजेण्टाईन साम्राज्य को नष्ट कर कुस्तन्तुनिया को अपनी राजधानी बना लेते हैं। ये उस्मानी तुर्क हंगरी को पारकर आस्ट्रिया की राजधानी वियेना के द्वार तक पहुंच जाते हैं, जहां वे सन् १६८३ में रोक दिये जाते हैं। साथ ही साथ ये उस्मानी तुर्क पश्चिमी एशिया को पार कर मिश्र और उत्तरी अफ्रीका में फैल जाते हैं।

इस तरह उस्मानी या ओटोमन-साम्राज्य एशिया, यूरोप और अफ्रीका को ठीक उसी तरह मिला रहा था, जिस तरह भूमध्य-सागर प्राकतिक रूप में तीनों महाद्वीपों को मिला रहा है। इसका असर तो यह होना चाहिये था कि भूमध्य-सागर और पश्चिमी एशिया, जो तीन महाद्वीपों के हजारों वर्षों से राजमार्ग बने हुए थे, और अधिक विकास को प्राप्त होते, परन्तु हुआ क्या? जो कुछ भी व्यापार-वाणिज्य भूमध्य-सागर और पश्चिमी एशिया के माध्यम से पीढ़ियों से चला आ रहा था, इस उस्मानी साम्राज्य के आते ही रेत के महल के समान एक बारगी ही बैठ गया।

भूमध्यसागर के माध्यम से बहुत सभ्यतायें विकसित हुईं और अनेक साम्राज्य बने, बिगड़े। पूर्व पश्चिम के इसी संधिस्थान-भूमध्यसागर और पश्चिमी एशिया से विभिन्न सभ्यताओं ने आदान प्रदान किया, तुर्कों द्वारा सभ्यता, व्यापार के इस सन्धि-

स्थल पर रोक लगा देने पर पश्चिम का पूर्व के साथ सम्बन्ध टूट गया। इस सम्बन्ध के टूट जाने से भूमध्यसागर के देशों का व्यापारिक दृष्टि से पतन हो गया।

वास्कोडिगामा आदि साहसिकों के प्रयत्न से पश्चिमी यूरोप के देशों का पूर्व से पुनः व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप आशा अन्तरीप का भारतीय और सुदूरपूर्वीय मार्ग खुल गया। जल्दी ही भूमध्य-सागर के देशों ने, विशेषतः फ्रांस ने यह चेष्टा शुरू की कि किसी तरह अफ्रीका का चक्कर काटे बिना ही मिश्र के रास्ते से पूर्व पहुंचा जाय। विभिन्न फ्रेंच प्रयत्नों के बाद स्वेज का मार्ग खुलने पर पूर्व पुनः युरोप से ४००० मील कम दूरी पर आ गया।

भूमध्यसागर की सैनिक व राजनैतिक उपयोगिता होने से यूरोपियन राष्ट्रों में यह प्रतिस्पर्द्धा भी होने लगी कि कौन इसके नाकों पर कब्जा करता है ? स्वेज नहर ब्रिटिश-साम्राज्य की रीढ़ की हड्डी है तो अदन, साइप्रस, क्रीट, माल्टा और जिब्राल्टर साम्राज्य के आधार कहने चाहियें। जिब्राल्टर के प्रवेश द्वार को निकम्मा करने के लिये ही ब्रिटेन के प्रतिद्वन्द्वी धुरी-राष्ट्र स्पेन, टैनजियर व बैलेरिक पर अपने सहायक फ्रांको को बैठाये हुए हैं।

जर्मनी ने स्वेज की नहर को बेकार बनाने के लिये ही बर्लिन-बगदाद-रेल की प्रसिद्ध योजना बनाई थी और आज भी धुरी-राष्ट्र टर्की को नाराज न कर, सीरिया को अपना बना कर, पूरब की ओर बढ़ना चाहते हैं। धुरी-राष्ट्रों की योजना का रूप यह सम्भव हो सकता है कि

पश्चिम में वे जिब्राल्टर के प्रवेश द्वार को बन्द करें और उत्तरी प्रवेशद्वार से जर्मन सेना सीरिया होती हुई मिश्र की ओर बढ़े और पश्चिम में लीबिया से और दक्षिण से अबीसीनिया से इटली की सेनायें मिश्र पर हमला करें। स्वेजपर अधिकार होते ही, धुरी-राष्ट्रों का ख्याल है, हिन्दुस्तान की तथा पूरब की कुंजी उनके हाथ में आ जायेगी।

धुरी-राष्ट्रों के प्रयत्नों के फलस्वरूप भूमध्यसागर इटली की झील वनती है या इटली भूमध्यसागर का कैदी बनता है, यह ब्रिटेन के भूमध्यसागर स्थित प्रवेश द्वारों और उनको मिलाने वाली जीवन रेखा की दृढ़ता से सिद्ध होगा ?

———

२

पश्चिमी द्वार-जिब्राल्टर

यूरोप का नक्शा देखिये। इस महाद्वीप के पश्चिम--दक्षिणी सिरे पर स्पेन के पीले रंग पर एक गुलाबी सा छींटा पड़ा हुआ दीखता है। इस जगह जिब्राल्टर नाम लिखा हुआ है और नाम के नीचे भी एक गुलाबी रेखा खिंची हुई है।

इस गुलाबी बिन्दु वाले जिब्राल्टर की स्थिति यदि हम देखें तो यह स्पष्ट ही है कि इसके उत्तर-पूर्व में यूरोप का महाद्वीप फैला हुआ है और इसके दक्षिण में नीले रंग की समुद्र की पतली सी धार के बाद अफ्रीका का महाद्वीप है। पूरब में विभिन्न देशों की भूमियों को छूने वाला भूमध्यसागर चला गया है। पश्चिम में अतलान्तिक महासागर (अंध महासागर) और अमेरिका

के महाद्वीप हैं। यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी किनारे के राष्ट्रों के लिए तथा अमेरिका के महाद्वीपों का निकट पूर्व और मध्य पूर्व के राष्ट्रों से संबन्ध कायम रखने के लिए जिब्राल्टर का द्वार बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह द्वार इन राष्ट्रों के लिए ही प्रवेश-द्वार का कार्य नहीं करता, अपितु भूमध्यसागर के राष्ट्रों जैसे—स्पेन, फ्रांस, इटली, यूनान, बाल्कन राष्ट्रों, टर्की, उत्तरी अफ्रीकन राष्ट्रों का भूमध्यसागर की झील से निकलने का पश्चिमी द्वार भी है।

पूर्व के तथा निकटपूर्व के राष्ट्रों से अपना सम्बन्ध बनाए रखने के इच्छुक राष्ट्रों के लिये तथा भूमध्यसागर से बाहर के राष्ट्रों से व्यापार करने की इच्छा वाले भूमध्यसागर के राष्ट्र व्यापार की जीवन रेखा के इस महत्वपूर्ण केन्द्र पर कब्जा जमाने की इच्छा रखते हों, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जिब्राल्टर की इस ब्रिटिश चट्टान के दक्षिण में अतलांतिक महासागर को भूमध्यसागर से मिलाने वाला ५० मील लम्बा और ८॥ मील से २३ मील तक का चौड़ा जिब्राल्टर का जलडमरूमध्य है। इस जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य के दक्षिण में अफ्रीका का महाद्वीप है, जिसका उत्तरीय छोर टैनजियर है।

अतलान्तिक महासागर और भूमध्यसागर को मिलाने वाले तथा अफ्रीका और यूरोप के महाद्वीपों को मिलाने वाले इस जलडमरूमध्य की कहानी पर भी एक नजर डालनी जरूरी है।

पुराने फ्यूनीशियन्स और यूनानियों के समय में यह जिब्राल्टर का जलडमरूमध्य हरकुलीज का स्तम्भ कहलाता था।

कार्थेज यूनान और रोम के समयों में भी यह प्रसिद्ध रहा।

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अरब की धर्मप्राण सेनायें उत्तरी अफ्रीका को जीत कर मोरक्को तक पहुंच गयीं थीं। पश्चिम में अतलान्तिक के आगे कोई देश न होने के कारण इस्लाम की सेना ने अफसोस किया कि अब पश्चिम में कोई देश नहीं रहा, जिसे अल्लाह के नाम पर फतह किया जाता।

अरब सेनायें मोरक्को से उत्तर की ओर समुद्र की पतली धार पार कर जिब्राल्टर पर पहुंचीं। अरब सेनायें आगे बढ़कर स्पेन पर भी छागईं और कहीं फ्रांस में उन्हें टूर्स के मैदान में चार्ल्स मार्टल द्वारा रोका जा सका। अरब सेनापति की इस विजय की स्मृति में ही जिब्राल्टर—इस नाम की रचना हुई। अरब सेनापति का नाम तरीक था और जिब्राल्टर का नाम अरबों ने 'जबल-उत-तरीक' अर्थात् तरीक की पहाड़ी रक्खा था।

सन् १४६२ में अरबों को भगाकर जिब्राल्टर पर स्पेनियर्ड्स ने क़ब्ज़ा कर लिया। स्पेनिश उत्तराधिकार की लड़ाई में यह अंग्रेज़ों के अधिकार में चला गया। इसके बाद यूट्रे की सन्धि के अनुसार जिब्राल्टर १७१३ में अंग्रेज़ों के अधिकार में स्वीकृत कर लिया गया। इस समय से इसपर अंग्रेज़ों का ही अधिकार है।

१७२६ में इस पर पहला घेरा स्पेनियर्ड्स ने डाला, जो असफल सिद्ध हुआ। १७७६ से १७८३ तक जिब्राल्टर पर सबसे बड़ा घेरा फ्रांसीसी और स्पेनियर्ड्स ने मिलकर डाला। लार्ड हैल्थफील्ड की अध्यक्षता में अंग्रेज़ों ने इसे असफल कर दिया। जिब्राल्टर

की चट्टानों की तोपों के द्वारा शत्रुओं के लकड़ी के जहाज़ों में आग लगा उन्हें बेकार कर दिया गया।

बड़े पिट ने इस तरह के घेरों के अनन्त ख़र्च से तङ्ग आकर स्पेनियर्डों को फ्लोरिडा या प्यूरेटो से जिब्राल्टर बदल देने की योजना रक्खी थी, परन्तु ब्रिटिश लोकमत ने इसका घोर विरोध किया।

नैपोलियन से इंग्लैंड के युद्धों में जिब्राल्टर एक अमूल्य नाविककेन्द्र सिद्ध हुआ। समुद्री लड़ाइयों में क्षतिग्रस्त जहाज़ों की यहां के बन्दरगाह पर मरम्मत की जाती थी। ट्राफलगर के प्रसिद्ध विजेता लॉर्ड नेलसन का शव भी यहां ही लाकर रक्खा गया था।

ब्रिटिश नौसेना के निर्माण में जिब्राल्टर का बहुत बड़ा स्थान है। बहुत से प्रसिद्ध ब्रिटिश-नौसेनापतियों और नौ-सैनिकों का निर्माण जिब्राल्टर में ही हुआ है। ड्रेक, हार्वर्ड, इफिन्गम, ब्लेक, होव, रूक सरीखे ब्रिटिश एडमिरल यहीं पर तैय्यार हुए थे।

ब्रिटिश-साम्राज्य का महल जिब्राल्टर की चट्टान की नींव पर रक्खा गया है। ब्रिटिश-साम्राज्य के पूर्वी विस्तार का यह पहला और सबसे ज़बर्दस्त पहरेदार है। जिब्राल्टर की चट्टान कोई आलंकारिक उक्ति नहीं है, अपितु जिब्राल्टर वास्तव में ही एक चट्टान पर खड़ा हुआ है।

स्पेन के दक्षिणी किनारे पर चूने के पत्थर की एक भूरी चट्टान समुद्र पर पहरेदार की न्याईं खड़ी है, जिसका दक्षिणी

हिस्सा १४३६ फ़ीट ऊंचा है और उत्तरी हिस्सा १०० फ़ीट नीचा है। आधार पर चट्टान की सम्पूर्ण लम्बाई पौने तीन मील है और अधिक से अधिक चौड़ाई पौन मील है। १६०८ में २६० एकड़ का नया मैदान तैय्यार कर जहाज़ों के ठहरने के लिए बन्दरगाह का विस्तार किया गया था। सबसे दक्षिणी किनारे पर ३०० फ़ीट और १०० फ़ीट की दो ऊंची पहाड़ी चोटियां हैं; जो यूरोप के अन्तिम सिरे हैं, इन्हें ही पुराने समय में 'हरकुलीज़ के स्तम्भ' नाम दिया गया था। चट्टान के पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में शत्रु का सामना करने के लिए ६-इंची और १५-इंची तोपें लगी हुई हैं।

तीन बाजुओं से चौदह हज़ार फ़ीट ऊंचे इस जिब्राल्टर के प्राकृतिक दुर्ग को मनुष्य ने पिछले वर्षों में संसार के एक सबसे बड़े सैनिक अड्डे के रूप में परिवर्तित कर दिया है। कहा जाता है, जिब्राल्टर की इस चट्टान पर कुछ वर्ष पहले एक विचित्र रंग का पूंछ-विहीन बन्दर रहता था, अब उसी स्थान पर ब्रिटिश सिंह अभिमान से बैठा हुआ है।

जिब्राल्टर के दक्षिण में जिब्राल्टर के पतले जलडमरू-मध्य को पार कर अफ्रीकन भूमि में अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती वाले टैनजियर की अवस्थिति है। यह जिब्राल्टर से ३५ मील दक्षिण में है। अफ्रीकन महाद्वीप का उत्तर पश्चिम छोर और जिब्राल्टर के नहले पर दहला होने के कारण, टैनजियर कूटनीतिक घातों का पिछले वर्षों में केन्द्र रहा है।

सन् १६१२ में ब्रिटिश राजा चार्ल्स द्वितीय को ब्रैगेन्जा की

कैथराइन से टैन्जियर दहेज में मिला था। सन् १६६४ में यह खर्चीला होने के कारण मोरक्को को दे दिया गया। यूरोपियन राजनीतिक हलचलों के समय में, मोरक्को पर फ्रेंच, स्पेनिश और ब्रिटिश आंखें होने पर सन् १६०५ में जर्मन सम्राट् कैसर विलियम द्वितीय यहां जर्मन-जंगी जहाजों के साथ पहुंचा था। यूरोपियन राष्ट्रों में पारस्परिक समझौते के फलस्वरूप टैनजियर को अन्तर्राष्ट्रीय वस्ती के रूप में स्वीकृत किया हुआ था। इस समझौते के अनुसार इस स्थान की क़िलेबन्दी नहीं की जा सकती तथा इसका प्रबन्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी करती है।

स्पेन-गृहयुद्ध के बाद स्पेन धुरी-राष्ट्रों के प्रभाव में चला गया था, और युद्ध में पराजय के बाद फ्रांस में जर्मन आक्रमण के प्रतिरोध की शक्ति नहीं रह गयी। इन दोनों घटनाओं के कारण जिब्राल्टर और टैनजियर की परिस्थितियों में भी अन्तर आ गया है। अक्तूबर सन् १६४० में दो परिवर्तनों की घोषणा की गयी है—प्रथम—ब्रिटिश अधिकारियों ने फ्रांस और स्पेन के स्थल-मार्ग से जिब्राल्टर पर हमला रोकने के लिये जिब्राल्टर के उत्तरी सिरे पर एक समुद्री-नहर निकाल कर उसे मुख्य महाद्वीप से अलग कर दिया है। इस तरह जिब्राल्टर अब एक द्वीप बन गया है।

दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि स्पेन की फ्रांको सरकार ने फ्रांस की वर्तमान सरकार की सहमति से टैनजियर की अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती पर कब्ज़ा कर लिया।

ये दोनों परिवर्तन महत्वपूर्ण असर रखते हैं । ब्रिटेन ने स्थलमार्ग से आक्रमण का बचाव कर लिया । दूसरी ओर इसे नाकारा करने के लिये धुरी-राष्ट्रों के हिमायती स्पेनिश मोरक्को ने टैनजियर पर अपना कब्ज़ा कर जिब्राल्टर का घेरा डालने का यत्न किया है ।

भूमध्यसागर के इस पश्चिमी प्रवेश-द्वार में किन दूसरे राष्ट्रों के कौन-से स्वार्थों पर आंच आती है और उनका उन्होंने क्या उपाय सोचा है, यह हम अगले किसी अध्याय में देखेंगे ।

———

३

पूर्वीय द्वार — स्वेज

भौगोलिक दृष्टि से मिश्र पूर्व और पश्चिम के बीच का सिंहद्वार है । युरोप और एशिया में वाणिज्य का यातायात होने के लिये यह आवश्यक है कि मिश्र में से सम्पत्ति होकर गुज़रे । किसी समय उसी के समृद्धिशाली नगरों में से होकर सुदूरपूर्व, फ़ारस, बैबीलोन, अरब, सोमालीलैंड, सूडान, यूनान, रोम, फ्रांस के दक्षिणी किनारों, उत्तरी अफरीका, स्पेन और भूमध्यसागर के बीच के टापुओं की चीजों का आदान प्रदान होता था । मिश्र का मालिक संसार के बाज़ार का नियन्त्रण करता था । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि विभिन्न साम्राज्यों ने अपनी गृध्र-दृष्टि इसकी ओर डाली, और अपने २

साम्राज्य के स्वप्न को पूर्ण करने के लिये, और इसकी, सैनिक भौगोलिक एवं व्यावसायिक स्थिति का लाभ उठाने के लिये इस की विजय के मन्सूबे बांधे।

मिश्र के पूर्व में एक बहुत ही पतला का स्थल डमरूमध्य एशिया को अफरीका से मिलाता है । यह आश्चर्य की बात होती, यदि मिश्र के पुरातन निवासी भूमध्यसागर और रक्तसागर के मिलाने के प्रश्न पर विचार न करते। पुरातत्व के किसी अज्ञात पन्ने में नील नदी और रक्त सागर को मिलानेवाली नहर की गाथा छिप गई है। लोकोक्ति से मालूम होता है कि मिश्र के सम्राटों की १२वीं वंशावली के सिसोट्रिस फरोहा ने पहली नहर बनवाई थी, जो फरोहों की नहर कहलाती थी।

ईसा से सातवीं शताब्दी पूर्व इस नहर को काट डाला गया । इसे ६१२ ई० पूर्व एक लाख बीस हज़ार गुलामों की सहायता से नीक्शो फरोहा ने फिर बनवाना शुरू किया । यह काम अधूरा ही रह गया और ५२१ ई० पूर्व डेरियस हिस्टेसपस ने इसे फिर चालू किया, और इसी ने नष्ट भी कर दिया। ईरान के सम्राट् जेरेक्सीज ने इसे फिर चालू किया।

टोल्मी फिलेडेल्फियस ने स्थलडमरूमध्य के बीच में से नहर काट, रक्तसागर और भूमध्यसागर को मिलाने की योजना बनाई थी, परन्तु इस विचार से कि रक्त सागर का पृष्ठतल भूमध्यसागर के पृष्ठतल से बहुत ऊंचा है और नहर निकालने पर मिश्र डूब जायगा, नहर बनाने का इरादा छोड़ दिया। यह भ्रांत विचार १९वीं शताब्दी तक जारी रहा है।

सातवीं शताब्दी में अरबों ने मिश्र जीत कर ६४१-४२ ई० पू० में फरोहों की नहर को फिर चालू किया। इस नहर को खलीफा अब्बासैद के समय में ७७६ ई० पश्चात् बन्द कर दिया गया। अमरू के समय में स्थलडमरूमध्य में से नहर की योजना बनाई गई, परन्तु इससे भूमध्यसागर के ईसाइयों का लाभ देख कर अरबों ने इस योजना को भी रद्द कर दिया।

इस समय से, मिश्र के मार्ग द्वारा, पूर्व और पश्चिम का व्यापार बहुत घट गया। तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों में मार्कोपोलो तथा दूसरे यूरोपियन यात्रियों के स्थल-मार्ग द्वारा एशिया की यात्रा के उदाहरणों से, बहुत से यात्री स्थल-मार्ग से पूरब जाने लगे थे, परन्तु उस्मानी तुर्कों ने पूरब जाने के स्थली और समुद्री रास्तों पर कब्ज़ा कर लिया और जब उन्होंने पूरब जानेवाले यात्रियों और व्यापारियों को लूटना शुरू किया तो पूर्व और पश्चिम का सम्बन्ध टूट गया। वेनिस, जिनोआ और मार्सेल्स के व्यापार और उनकी व्यापारिक श्रेष्ठता इस प्रकार खत्म हो गई।

पूर्व की अथाह सम्पत्ति को प्राप्त करने और सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान से सम्बन्ध बढ़ाने के लिये यूरोपियन साहसिकों ने नया रास्ता खोज कर सुनहरे पूरब तक पहुंचने का यत्न किया।

पृथ्वी गोल है और पश्चिम में चलकर हम हिन्दुस्तान पहुंच जायेंगे, जब इस धारणा पर चलकर क्रिस्टोफर कोलम्बस अमेरिका पहुंचा, लगभग तभी अफ्रीका का चक्कर काटकर आशा-

अन्तरीप होता हुआ वास्को-डी-गामा सन् १४९७ में हिन्दुस्तान में मलाबार के किनारे कालीकट स्थान पर पहुंचा।

इस तरह एक लम्बा, परन्तु व्यापार योग्य मार्ग हिन्दुस्तान और सुदूरपूर्व के साथ यूरोप का खुल गया। यह मार्ग लगभग एक शताब्दी तक कायम रहा। इस तरह इस नवीन मार्ग ने, पूर्व के साथ अतलांतक महासागर के किनारे पर स्थित शक्तियों —पोर्तुगीज, डच, फ्रेंच और ब्रिटिश लोगों— को पूर्व के साथ व्यापार का एकाधिकार दे दिया।

फ्रांस का एक किनारा अतलान्तक महासागर पर है तो दूसरा किनारा भूमध्यसागर पर भी है। इंगलैंड और हालैंड, आशा अन्तरीप के रास्ते ही पूरब से व्यापार करके संतुष्ट थे, परन्तु फ्रांस के सामने मार्सेल्स और दक्षिणी फ्रांस के व्यापार का भी प्रश्न था। फ्रांस के एक लेखक ने इसी समस्या को सामने रखते हुए फ्रेंच प्रधान-मन्त्री रिशलू से कहा था—"पुराने मिश्री-फरोहों की नाईं स्वेज से कैरो तक नहर खोद देने पर तुर्क अपने देश को सम्पन्न बना लेंगे। वेनिस के दिन पुनः लौट आयेंगे। मार्सेल्स फिर शक्तिशाली बन जायगा, अबीसीनिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। समुद्रों के इस संगम से स्पेनियर्ड भूमध्य-सागर में कमजोर हो जायेंगे और दूसरे राजघराने मजबूत हो जायेंगे।"

१७वीं शताब्दी में भारत के साथ यूरोप का व्यापार बहुत बढ़ा। विभिन्न यूरोपियन कम्पनियों के संगठित हो जाने से यूरोपियन राष्ट्रों में भारतीय व्यापार के लिये प्रतिस्पर्द्धा पैदा हो

गई थी। कनाडा के छिन जाने से फ्रांस को और अमरीकन उपनिवेशों के आजाद हो जाने पर इंगलैंड को तब साम्राज्य-विस्तार की लालसा हुई तब इनकी लड़ाई का क्रीड़ास्थल एशिया चुनना पड़ा था। सप्तवर्षीय युद्धों और क्लाईव की विजयों से भारत में अंगरेजों का एकाधिकार स्थापित हो गया था, परन्तु शेष पूर्व अभी बचा हुआ था। सस्ते, सुरक्षित और नवीन व्यापारिक मार्ग को जो ढूंढ़ निकालता, उसे ही वहां सफलता मिल सकती थी।

इसी बात ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि यूरोपियन महाद्वीप पर हुई महत्वपूर्ण विजय से भी ज्यादह महत्वपूर्ण की समृद्धि का भरपूर उपयोग रखता है। इसीसे प्रेरित होकर ब्रिटेन ने निश्चय कर लिया कि वह अपने व्यापार की तथा साम्राज्य की गारन्टी के लिए समुद्रों की रानी बनकर रहेगा, जिससे उत्तमाशा अन्तरीप का रास्ता हर प्रकार की बाधा से रहित हो जाय। इसी ज्ञान से प्रेरित होकर फ्रांस ने निश्चय किया था कि मिश्र के पुराने व्यापारिक रास्ते को पुनः खोलकर आशा अन्तरीप के व्यापार का खात्मा कर दिया जाय।

सबसे पहले बैरन-डी-बाल्डमर ने यह खोज निकाला कि भूमध्यसागर व रक्त सागर के पृष्ठतलों के विषम होने की कथा काल्पनिक है, परन्तु उसके पास इसका कोई जबर्दस्त प्रमाण न था।

इसी समय फ्रांस में राज-तन्त्र की जगह प्रजातन्त्र ने ले ली। सन् १७९७ में टैलीरैंड को नेपोलियन ने लिखा था— 'वह समय दूर नहीं है, जब हम यह अनुभव करेंगे कि ब्रिटेन

को तबाह करने के लिये हमारे लिये यह जरूरी है कि हम मिश्र पर कब्जा कर लें।'

मिश्र-स्थित तत्कालीन फ्रेंच राजदूत ने टैलीरैंड को बहुत से कागजात भेजे थे, जिसके आधार पर टैलीरैंड ने फ्रेंच डायरेक्टरेट (शासक-सभा) को लिखा था — 'मिश्र पर फ्रेंच आधिपत्य हो जाने पर जहां यूरोप में व्यावसायिक क्रांति हो जायेगी, वहां ब्रिटेन पर भी इसका असर पड़ेगा। यह उसकी हिन्दुस्तान की शक्ति को नष्ट कर देगा और हिन्दुस्तान की शक्ति से ही वह यूरोप में भी शक्तिशाली बना हुआ है। स्वेज के रास्ते का पुनरुद्धार ब्रिटेन पर भारी असर करेगा। इसका असर उतना ही खतरनाक होगा, जितना उत्तमाशा अन्तरीप के रास्ते के निकलने का जिनोआ और वेनिस के व्यवसाय पर पड़ा था। इस क्रांति का लाभ फ्रेंच-प्रजातन्त्र को मिलेगा, क्योंकि भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या, दूरदर्शिता और चतुरता की दृष्टि से वही एक शक्ति है, जो इस लाभ को उठा सकती है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि वही पुरातन और आधुनिक राष्ट्र धनधान्य से भरपूर हुए हैं, जिन्होंने भारत के व्यापार का नियन्त्रण अपने हाथों में रक्खा है। यदि फ्रेंच प्रजातन्त्र कैरो का स्वामी बन गया और साथ ही स्वेज का भी, तो इसका कुछ महत्त्व न रह जायगा कि किसके हाथ में उत्तमाशा अन्तरीप है?"

इंगलैंड उस समय अचम्भे में रह गया था, जब नैपोलियन ने अलेक्जण्ड्रिया में अपनी सेनायें उतार कर मिश्र पर कब्जा कर लिया था। नैपोलियन अपनी सेनाओं के साथ

इंजिनीयरों और वैज्ञानिकों की पूरी पल्टन लाया था। इन्होंने पुरानी रक्तसागर-नील नदी की नहर के ध्वंसावशेष भी देखे। यह भी विचार हुआ कि विभिन्न देशों के महान् व्यक्तियों द्वारा निर्माण की गई पुरानी नहर को ही पुनरुज्जीवित किया जाय। रक्त-सागर और भूमध्यसागर को मिलाने वाली नहर के बारे में अन्वेषण के परिणाम-स्वरूप लैपरे ने यह परिणाम निकाला कि रक्त सागर का पृष्ठतल भूमध्यसागर से ३० फीट ऊंचा है। हजार वर्ष से जलप्रवाह सूख जाने पर मिश्र की समृद्धि विलीन हो गई थी, नई नहर द्वारा इस स्थिति में पुनः परिवर्तन होना था, इसका श्रेय था — नैपोलियन को।

परन्तु नील और अबूकर की लड़ाइयों के कारण नैपोलियन का स्वप्न अधूरा हो रह गया। एमोन्स की संधि से नैपोलियन की मिश्र-सम्बन्धी महत्वाकांक्षा का पटाक्षेप हो गया। हां, फ्रेंच लोगों में स्वेज नहर के बारे में नैपोलियन एक महत्वाकांक्षा पैदा कर गया।

प्रसिद्ध अंग्रेज-यात्री वैगहोर्न ने अपने यात्रा-अनुभवों के आधार पर ब्रिटिश सरकार को बाधित किया कि वह मिश्र के रास्ते भारतवर्ष को डाक भेजा करे। अपनी निगरानी और ज़िम्मेवारी पर भारत और ब्रिटेन के बीच में डाक का यातायात करके, वैगहोर्न ने स्वेज़ की उपयोगिता को सिद्ध कर दिया।

इस समय मिश्र पर इंग्लैंड, फ्रांस और आस्ट्रिया अपना अधिकार-क्षेत्र कायम करना चाहते थे। इंग्लैंड चाहता था कि अलेक्जेण्ड्रिया से कैरो तक रेल-मार्ग खोला जाय, परन्तु फ्रांस

तथा आस्ट्रिया चाहते थे कि स्वेज़ नहर काटी जाय।

सन् १८४६ में मिश्री शासक-अब्बास ने कैरो-अलेक्ज-एण्ड्रिया रेलवे बनाने की स्वीकृति दे दी। मिश्र का शासक समझता था कि रेल बनाने का मामला तो मिश्र का घरू मामला है, परन्तु नहर के निर्माण से भौगौलिक परिस्थिति में भेद आकर अन्तर्राष्ट्रीय असर हो जायगा, इसलिये अब्बास तैय्यार नहीं हुआ कि बिना तुर्की-सुल्तान की अनुमति के नहर बनाने का परवाना दिया जाय।

मसिय डी-लैसेप्स वह उदारमना व्यक्ति था, जिसे सदा याद किया जायगा, क्योंकि उसने बिना किसी मदद के विभिन्न सरकारों के विरोध होते हुए भी, स्वेज़ नहर के कार्य को शुरू से अन्त तक पहुंचाया। मसिय डी-लैसेप्स जब मिश्र में राजदूत था, तभी उसकी मिश्री युवराज मुहम्मद सैद से मित्रता हो गई थी।

अब्बास की मृत्यु का समाचार मिलते ही डी-लैसेप्स फ्रांस से चलकर मिश्र जा पहुंचा। मिश्र में पुरानी मित्रता, घुड़सवारी की कुशलता पारस्परिक विश्वास, और अपने व्यक्तित्व की बदौलत डी-लैसेप्स ने मुहम्मद सैद से स्वेज़ नहर के निर्माण का परवाना ले लिया। इस परवाने के अनुसार डी लैसेप्स की अध्यक्षता में एक कम्पनी का संगठन होना था, जिसने स्वेज़ नहर का निर्माण करना था। स्वेज नहर के निर्माण से ९९ साल तक नहर की व्यवस्था का पट्टा भी स्वेज कम्पनी को मिलना था, परन्तु तुर्की सुल्तान की मंजूरी इस परवाने पर जरूरी थी। इसके लिये डी-लैसेप्स ने कुस्तुन्तुनिया में तुर्की सुल्तान से कहा कि मैं मिश्री शासक का

प्रतिनिधि हूं न कि किसी यूरोपियन राष्ट्र का । ब्रिटिश सरकार ने शुरू में रोड़े अटकाये, अन्त में फ्रेंच सरकार से यह तय हुआ कि इस काम में कोई सरकार बीच में नहीं पड़ेगी।

इसी समय विभिन्न यूरोपियन देशों के विशेषज्ञों ने अपनी खोज के आधार पर यह घोषित किया कि स्वेज नहर खुद सकती है; क्योंकि रक्तसागर और भूमध्यसागर के पृष्ठतलों के विषम होने की मान्यता निर्मूल है।

लार्ड पामरस्टन ने इसी समय नहर के बारे में कहा कि नहर की योजना का पूर्ण हो जाने पर मिश्र और टर्की के सम्बन्ध टूट जायेंगे । सीरिया (शाम-मैसोपोटामिया) होकर आनेवाली तुर्की सेना को नहर द्वारा रोकना इस योजना का अभिप्राय है। यह सन्देह ब्रिटेन की ओर से प्रकट किया गया।

सन् ५७ के भारतीय-स्वातन्त्र्यान्दोलन के समय ब्रिटेन ने स्वेज की उपयोगिता अनुभव कर ली। साथ ही नैपोलियन तृतीय ने मसिय डी-लैसेप्स को आवश्यक फ्रेंच-सहायता दिलाने का आश्वासन दिया। मुहम्मद सैद के मर जाने पर मिश्री शासक इस्माइल ने भी डी लैसेप्स को कहा-'मैं तुम्हें नहर के कार्य में साथ दूंगा।'

इस तरह सब दिक्कतों को पारकर १६ मार्च सन् १८६६ को नहर बनाने के लिये तुर्की सुल्तान की मंजूरी मिल गयी। १७ नवम्बर सन् १८६६ को स्वेज़ नहर खुल गई।

स्वेज नहर की व्यवस्था तथा स्वेज के क्षेत्र का शासन प्रबन्ध स्वेज नहर कम्पनी करती है, जिनके ३२ डाइरेक्टर हैं, जिनमें १६

फ्रेंच, १० ब्रिटिश, १ डच और दो मिश्री हैं।

स्वेज़ नहर अब संसार के राजनैतिक और भौतिक भूगोल का एक अंग बन चुकी है। यह रक्तसागर और भू-मध्य सागर को मिलाती है। एशिया और अफरीका के दो महाद्वीपों को अलग करती है। नहर की वास्तविक लम्बाई १०० मील (७६ मील नहर + २४ मील झीलें) है। जहाजों के गुजरने का आनुपातिक समय १५ घन्टे से १८ घन्टे तक है। विद्युतदीपों की सहायता से रात को भी जहाज नहर में से गुजर सकते हैं। इस नहर के निर्माण में कुल खर्चा १ करोड़ ६० लाख पाउण्ड आया था। सन् १८८५-८६ में नहर को चौड़ा और गहरा बनाने में कम्पनी का ४० लाख पाउण्ड खर्चा आया। सन् १८२६ से १६४० तक कम्पनी का नहर की मरम्मत विस्तार आदि पर लाखों पाउण्ड खर्चा आया है।

सन् १८७५ में लार्ड बेकन्सफील्ड (डिजरैली) ने नहर-कम्पनी के लगभग आधे शेयर मिश्र के दिवालिये खदीव (शासक) से खरीद लिये थे, इन शेयरों का वर्तमान मूल्य ३ करोड़ ६० लाख पाउण्ड है, खदीव को इन शेयरों की कीमत केवल ४० लाख पाउण्ड ही ब्रिटिश सरकार से मिली थी। ब्रिटिश सरकार को इन शेयरों से वार्षिक-आमदनी ३० लाख पाउण्ड होती है।

सन् १६०६ में स्वेज कम्पनी और मिश्री सरकार के बीच में सन् १६६८ की १७ नवम्बर को खत्म होनेवाले कम्पनी के पट्टे के बारे में बातचीत शुरू हुई थी। इस में स्वेज-कम्पनी नेन् स

१६६८ से अगले ५० वर्ष के लिये अर्थात् ३१ दिसम्बर सन् २००८ ईसवी तक के लिये पट्टा मांगा था। इस पट्टे में मिश्री सरकार के लिये लाभ था। मिश्री सरकार ने जब यह पट्टा असेम्बली के सामने उपस्थित किया, तो असेम्बली ने सन् १६१० में इसे रद्द कर दिया।

सन् १६१४ तक मिश्र तुर्की सुल्तान का वफादार होता हुआ भी, सन् १७७६ से ही ब्रिटेन के कब्जे में चला आ रहा था। टर्की के महायुद्ध में पड़ते ही ब्रिटेन ने मिश्र को अपने प्रभुत्व एवं संरक्षण में ले लिया।

इसके परिणामस्वरूप महायुद्ध के बाद मिश्र में टर्की की सर्वोच्चता के स्थान में ब्रिटिश सर्वोच्चता स्थापित हो गई। साथ ही ब्रिटेन कठपुतली मिश्री-सुल्तान की सहमति से नहर स्वेज का संरक्षक भी बन बैठा।

यूरोपियन राष्ट्रों के सन्१८८८ के २६ अक्टूबर के एक करार के अनुसार स्वेज नहर के लिये यह निश्चित हुआ है—"स्वेज की सामुद्रिक नहर युद्ध और शान्ति के समयों में प्रत्येक व्यापारिक व युद्धपोत के लिये, बिना किसी राष्ट्र का भेद किये हुए सदा खुली रहेगी। इस के अनुसार हस्ताक्षर करनेवाली शक्तियां नहर के मुक्त उपयोग के लिये युद्ध और शान्ति के समय में समानरूप से किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने में सहमत हैं। नहर पर नाकाबंदी कभी नहीं की जा सकती।"

सन् १६१५ में स्वेज की नहररूपी खाई का उपयोग करके सीरिया के मार्ग से मिश्र पर का आक्रमण अंगरेजों ने रोक दिया था।

सन् १९२२ तथा १९३२ की ब्रिटिश घोषणाओं के अनुसार मिश्र के स्वतन्त्र देश होने पर, भी जब तक स्वेज नहर-कम्पनी और स्वेज की रक्षा की गारन्टी ब्रिटेन पर है, तब तक भारत और पूर्व के एक सिंहद्वार की कुंजी ब्रिटिश शेर के ही पास है। सन् १९६८ की १७ नवम्बर को स्वेज कम्पनी का पट्टा खतम होने पर स्वेज नहर मिश्री सरकार के हाथों में चली जायगी, परन्तु वर्तमान महायुद्ध के कारण अनिश्चित भविष्य में स्वेज की सुरक्षा की गारन्टी करनी कठिन है।

४

उत्तरी झरोखा — दर्रे-दानियाल

भूमध्यसागर के उत्तर-पूर्वी किनारे पर एजियन सागर है। एजियन सागर से उत्तर-पूर्व में बढ़ने पर हमें एशिया और यूरोप को अलग करने वाला दर्रे-दानियाल का जलडमरूमध्य मिलता है। यह जलडमरूमध्य एजियन सागर और मारमरा सागर को मिलाता है। टर्की के यूरोपियन और एशियाई विभागों को बांटने वाले मारमरा सागर को पार करने पर कुस्तुन्तुनिया का प्रसिद्ध शहर, जिसका नाम अब इस्ताम्बुल है, उत्तरी किनारे पर स्थित है। आगे यूरोप और एशिया को अलग करने वाला बासफोरस का जलडमरूमध्य है। बासफोरस का

जलडमरूमध्य मारमरा के सागर को कृष्णसागर से अलग करता है। कृष्णसागर रूस, टर्की, रूमानिया, बल्गेरिया आदि राष्ट्रों के लिए बाह्य संसार तक आने जाने का मार्ग है। टर्की के पास तो दूसरा भी समुद्री किनारा है, परन्तु रूस, बल्गेरिया और रूमानिया के लिये, दक्षिण में इसके सिवाय, बाह्य दुनिया के साथ यातायात का और कोई सामुद्रिक मार्ग नहीं है।

कृष्णसागर कोई बड़ा महासागर नहीं है और इस सागर से दुनिया की व्यापार की मण्डियां भी नजदीक नहीं हैं। कृष्णसागर, बासफोरस और दर्रे-दानियाल के जलडमरूमध्यों द्वारा भूमध्यसागर से और शेष संसार से सम्बन्ध स्थापित करता है। यही इसके महत्व का कारण है। दर्रे-दानियाल, पूर्वी यूरोप और रूस का बाहिर की दुनिया से सम्बन्ध करने का प्रमुख द्वार न होकर उसका एक माध्यम मात्र है। इसी कारण हमने इसे उत्तरी-द्वार नाम न दे कर उत्तरी झरोखा कहा है।

भूमध्यसागर का यह उत्तरी झरोखा दर्रेदानियाल यूरोप और एशिया के बीच में पतला-सा जलडमरूमध्य है। एजियन सागर और मारमरा सागर को मिलाने वाला यह जलडमरूमध्य ४५ मील लम्बा और ५ मील से १ मील तक चौड़ा है। सब से कम चौड़ाई सेस्टस और अबीडस के मध्यवर्ती स्थान पर है।

दूसरी ओर, बासफोरस का जलडमरूमध्य टर्की को यूरोप और एशिया में विभक्त करने वाले मारमरा सागर और कृष्णसागर को मिलाता है। इसके उत्तरी सिरे पर यूरोप की भूमि पर कुस्तुन्तुनिया का शहर है। बासफोरस के जलडमरूमध्य की

लम्बाई १७ मील और चौड़ाई १ मील से २ मील तक है। इसके समुद्री किनारों को ऊंचा उठा दिया गया है, जिन पर कीमती लकड़ियों के पेड़ लगाए गए हैं।

दर्रेदानियाल पूर्व और पश्चिम को अलग करने वाली एक खाई है। इसी को पार कर विभिन्न समयों में कभी पूर्व से तो कभी पश्चिम से आक्रमणकारियों के रेले पर रेले गुजरते रहे हैं।

ईसा से ४८० वर्ष पूर्व ईरान का बादशाह जेरेक्सीज दर्रेदानियाल को, जो उस समय हैलेस्पोण्ड कहलाता था, पार कर यूरोप पहुंचा। इसने दर्रेदानियाल के सब से कम फासले के सैस्टस और एबीडस के बीच वाले स्थान पर नौकाओं का पुल बना कर सेनाओं को पार उतारा था। ठीक इसी स्थान से ईसा से ३३४ वर्ष पूर्व सिकन्दर महान् ने भी पंजाब तक पहुंचने वाली अपनी यूनानी विजयवाहिनी सेना को पार उतारा था।

सन् ३३६ ई० प० में रोमन सम्राट् कान्स्टेण्टाइन ने, कृष्णसागर और भूमध्यसागर के बीच में, बास्फोरस के जलडमरूमध्य के उत्तरी किनारे पर, बिजैण्टियम नाम के पुराने शहर के पास, अपने नाम से एक शहर कान्स्टेण्टिनोपुल या कुस्तुन्तुनिया बसाया। उत्तरी यूरोप की 'बर्बर' जातियों के हमले से रोमन-साम्राज्य को बचाने के लिये कान्स्टेन्टाइन ने कुस्तुन्तुनिया या नये रोम को रोमन साम्राज्य की राजधानी बनाया। एशिया के कई देशों में कुस्तुन्तुनिया को अब भी रोम या रूम कहा जाता है।

कुस्तुन्तुनिया का यह शहर यूरोप के किनारे पर खड़ा होकर

महान् शक्तिशाली एशिया की ओर देख रहा है। यह दो महाद्वीपों के बीच में एक कड़ी के समान है। बहुत से बड़े-बड़े स्थली और समुद्री व्यापारिक-मार्ग इसी से हो कर गुजरते थे और अब भी गुजरते हैं। अपना विस्तार चाहने वाले किसी भी साम्राज्य की राजधानी के लिये यह मौके की जगह है।

रोमन साम्राज्य के दो हिस्से, पूर्वी रोमन साम्राज्य और पश्चिमी रोमन साम्राज्य, हो जाने पर कुस्तुन्तुनिया पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी हो गया। ग्यारह सौ वर्ष तक यह शहर अपने साम्राज्य के साथ असाधारण रूप से कायम रहा। सन् १४५३ में इसका पतन हो गया और कुस्तुन्तुनिया पर ओटोमन या उस्मानी तुर्कों ने कब्जा कर लिया। उस समय से आजतक, लगभग ५०० वर्ष से, कुस्तुन्तुनिया पर तुर्कों का कब्जा है।

पिछले महायुद्ध के समय ब्रिटिश लोगों ने बहुत कोशिश की थी कि किसी तरह वह दर्रेदानियाल पर कब्जा कर लें, परन्तु जर्मन जनरल लीमैन-वान-सैन्डर्स ने तुर्कों को बहुत सुसंगठित और सुव्यवस्थित सेना के रूप में बदल दिया था। सन् १९१५ में बहुत कोशिशों के बावजूद अंगरेज कुछ न कर सके और युवक सेनानी मुस्तफा कमालपाशा ने अंगरेजी सेनाओं को पीछे धकेल कर दर्रेदानियाल को खतरे से बाहर कर दिया।

महायुद्ध में टर्की के हारने के बाद कुस्तुन्तुनिया पर अंगरेजी सेनाओं का कब्जा होगया था। उस समय टर्की का सुलतान अंगरेजों के हाथ की कठपुतली बना हुआ था। टर्की के सुलतान से की गई सेवेरेज की सन्धि के अनुसार, मारमरा समुद्र के

किनारे के भाग तथा कृष्णसागर के दक्षिणी भाग पर मित्र राष्ट्रों का कब्जा होना था। टर्की के पश्चिमी प्रान्त स्मर्ना पर ग्रीस का अधिकार हो जाना था और अडेलिया पर इटली ने कब्जा कर लेना था। शेष कटा-छंटा टर्की तुर्कों का देश रहना था। यदि यह सन्धि कारगर हो जाती, तो अंगरेज भूमध्यसागर के इस उत्तरी झरोखे और पूर्व तथा पश्चिम के संगम पर अपना मजबूत अड्डा बनाकर, अपने साम्राज्य का एक और आधारस्तम्भ तैय्यार कर लेते। परन्तु मुस्तफा कमाल के नेतृत्व में तुर्कों ने केवल सेवरेज की सन्धि को ही मानने से इंकार न किया, अपितु उन्होंने मित्र-राष्ट्रों द्वारा उकसाए हुए ग्रीस देश की सेना को हराकर, मित्र राष्ट्रों, इटली और यूनान के मन्सूबों पर भी पानी फेर दिया।

कमाल अतातुर्क ने कुस्तुन्तुनिया को केवल इस्ताम्बुल नाम ही नहीं दिया, बल्कि उन्होंने इस शहर की राजसी स्मृतियों से अपने को दूर रखते हुए, एशिया माइनर में अंकारा या अंगोरा को टर्की की राजधानी बनाया।

लौसान की सन्धि द्वारा सेवरेज की सन्धि तो रद्द हुई ही, साथ ही सम्पूर्ण अनातोलिया, पूर्वी थ्रेस, और कुस्तुन्तुनिया पर भी टर्की का कब्जा हो गया। हां, टर्की को दर्रेदानियाल की किलेबन्दी करने की अधिकार-प्राप्ति राष्ट्रसङ्घ की मर्जी पर छोड़ी गया। सन् १९३८ में टर्की ने इसकी दुबारा किलेबन्दी राष्ट्रसंघ की अनुमति से कर ली है।

दर्रेदानियाल और बासफोरस का सैनिक दृष्टि से बहुत

महत्व है, क्योंकि ये जहां पर यूरोप और एशिया के बीच की कड़ी हैं, वहां ये भूमध्यसागर से कृष्ण और मारमरा सागरों को भी मिलाते हैं।

सन् १८०७ में ब्रिटिश नौसेनापति एडमिरल डकफोर्थ दर्रेदानियाल में से गुजर कर कुस्तुन्तुनिया पहुंचा था। सन् १८४१ की अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के अनुसार बिना टर्की की अनुमति के कोई भी लड़ाकू जहाज दर्रेदानियाल में से नहीं गुजर सकता। किन्तु सन् १८७८ में कुस्तुन्तुनिया को रूसी हमले से बचाने के लिए ब्रिटिश जङ्गी बेड़ा इसमें से गुजरा था। सन् १८६१ में तुर्की सुलतान की इजाजत से ही रूसी स्वयंसेवक बेड़ा गुजरा था। रूस-जापान युद्ध के समय में भी रूसी जहाज व्यापारिक झण्डा लगा कर यहां से गुजरे थे।

सन् १८७८ की बर्लिन की सन्धि के अनुसार बासफोरस में से टर्की के युद्धपोतों के सिवाय और कोई जंगी जहाज नहीं गुजर सकता।

वर्ष भर न जमने वाले गरम पानी के बन्दरगाहों को चाहने के कारण रूस की पिछले वर्षों में यह इच्छा रही है कि वह दर्रेदानियाल में से अपने जहाजों को सदा गुजारने का अधिकार पा जावे। रूस के इस दावे को टर्की कभी स्वीकार नहीं कर सकता है, हां अच्छे पड़ौसी के नाते वह रूस को बासफोरस और दर्रेदानियाल में से गुजरने के लिये अच्छी शर्तें पेश कर सकता है। कृष्ण सागर की मुंहबन्द बोतल में से भूमध्यसागर तक पहुंचने के लिये अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में रूस सिरतोड़

कोशिश करता रहा है। परन्तु ब्रिटेन, फ्रांस और टर्की के संयुक्त विरोध के प.रणामस्वरूप रूस की इधर दाल न गल सकी।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में जर्मनी के निरन्तर प्रगतिशील और साम्राज्य के लिए इच्छुक होने पर ब्रिटेन को बहुत चिन्ता रही है। ब्रिटेन जर्मनी की उन्नति देखता हुआ और उसके जंगी बेड़े के बढ़ाने के इरादे को सुनकर, अपनी नौसेना को शक्तिशाली बनाने में लग गया, परन्तु जर्मनी ने जहां अपना समुद्री बेड़ा बनाया, वहां भूमध्यसागर के जलीय मार्ग को व्यर्थ करने के लिये, टर्की और बाल्कन राष्ट्रों में से स्थलमार्ग द्वारा पूर्वसें व्यापार की योजना बनाई। बर्लिन-बगदाद रेलवे जर्मनों की इसी योजना का परिणाम था। शुरू में अंगरेजों को जर्मनों की इस योजना पर कोई शक नहीं हुआ, परन्तु शीघ्र ही वे उनके असली भेद को भांप गए। उन्होंने कोवित के शेख पर दबाव डाला, जिसके फल-स्वरूप रेल केवल बसरा तक ही पहुंच पाई और फारस की खाड़ी के बन्दरगाह कोवित तक रेल का पहुंचना अंगरेजों की सहमति पर छोड़ना पड़ा।

इसी बीच यूरोपियन लड़ाई छिड़ जाने के कारण रेल की समस्या बीच में ही रह गई।

महायुद्ध के बाद से ब्रिटेन की नीति यह रही है कि यदि टर्की को अपने पक्ष में नहीं किया जा सकता तो कम से कम उसे असन्तुष्ट तो न किया जाय। ब्रिटेन भी यह अच्छी तरह समझ गया है कि मध्य-यूरोप के प्रगतिशाली राष्ट्र पूर्व में विस्तार की इच्छा से टर्की के रास्ते जहां पूर्व में पहुंच सकते हैं,

वहां स्वेज के मार्ग तथा पूर्व के ब्रिटिश साम्राज्य को भी सदा के लिये खतरे में डाल सकते हैं। यही कारण है, कि टर्की पिछले वर्षों में धुरी राष्ट्रों, विशेषतः जर्मनी की, तथा ब्रिटेन की कूटनीतिक चर्चाओं और राजनीतिक हल-चलों का केन्द्र रहा है।

६

भूमध्य-सागर पर इंगलैंड का प्रभुत्व

यूरोप, एशिया और अफरीका के महाद्वीपों का मध्यवर्ती होने से भूमध्यसागर का जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है, उसी प्रकार भूमध्यसागर के पश्चिमी प्रवेशद्वार जिब्राल्टर से स्वेज और अदन तक का जल-मार्ग ब्रिटेन के साम्राज्य की जीवन-रेखा कही जा सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन यह अच्छी तरह अनुभव कर चुका है कि उसकी जीवन-रेखा के प्रवाह को उसी समय तक निरन्तर बहने की गारन्टी मिल सकती है, जब तक जीवन-रेखा के सभी महत्वपूर्ण प्रवेश-द्वारों पर तथा जीवन-रेखा

के महत्वपूर्ण स्टेशनों पर उसका अपना नियन्त्रण रहे । ब्रिटेन ने इस कठोर सत्य को किस प्रकार अनुभव किया, इसकी भी एक कहानी है ।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में मार्को पोलो तथा दूसरे यूरोपियन यात्रियों के स्थलमार्ग द्वारा एशिया की यात्रा के उदाहरण से बहुत से युरोपियन यात्री स्थलमार्ग से पूरब आने लगे थे । यह स्थल-मार्ग पश्चिमी एशिया के देशों टर्की, फारस, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान, तुर्किस्तान अथवा मध्य एशिया में होकर भारत और पूर्व के साथ यूरोप को मिलाता था । बहुत-सा व्यापार जलमार्ग द्वारा भी होता था । यह जलमार्ग दक्षिणी यूरोप के देशों से भूमध्यसागर में होकर, मिश्र या टर्की के देशोंको पार कर,फारस की खाड़ी अथवा रक्तसागर में से गुज़र कर अरब सागर होता हुआ भारत पहुंचता था । इस जलमार्ग में बीच का, मिस्र अथवा तुर्की देशों का, स्थल-मार्ग ऊंटों द्वारा पार करना पड़ता था। इसी समय सन् १४५३ में उस्मानी तुर्कोंने कुस्तुन्तुनिया पर कब्जा कर रोमन (बिजेण्टाईन) साम्राज्य का अन्त कर दिया। उस्मानी साम्राज्य ने, जिसे ओटोमन साम्राज्य भी कहते हैं, यूरोप में बढ़ते हुए, बाल्कन राष्ट्रों तथा हंगरी पर कब्जा कर लिया । पश्चिमी एशिया में बगदाद तक और अफरीका में मिश्र तक तुर्क कब्जा हो गया ।

इस तरह पूरब आने के स्थलीय और समुद्री मार्गों पर टर्की का अधिकार हो गया। तुर्कों ने यूरोपियन व्यापारियों और यात्रियों को लूटना शुरू कर दिया। फलतः यूरोप और एशिया का व्यापार-सम्बंध टूटगया। साथ ही वेनिस, जिनोआ और मार्सेल्स

की बड़ी व्यापारिक मण्डियां उजड़ गयीं। भूमध्यसागर का व्यापार तो खत्म हो गया, परन्तु सुनहरे पूरब के सोने तथा सोने की चिड़िया भारत की अथाह सम्पत्ति को प्राप्ति की अभिलाषा यूरोपियन व्यापारियों और साहसिकों को बेचैन करने लगी।

सोने की चिड़िया भारत की दौलत के लालच से हिन्दुस्तान के नये मार्ग का ढूंढना जरूरी था। उस समय यूरोप यह जान चुका था कि पृथ्वी गोल है। यूरोप के साहसिकों ने सोचा कि यदि भूमि गोल है तो पश्चिम की ओर चलकर भी भारत पहुंचा जा सकता है। इसी सिद्धान्त पर चलकर क्रिस्टोफर कोलम्बस अमेरिका पहुंचा। इसी समय अफरीका का चक्कर काटता हुआ वास्को-डि-गामा आशा अन्तरीप होकर कालीकट पहुंचा। इस तरह एक लम्बा परंतु व्यापार-योग्य जल-मार्ग यूरोप से भारत तथा पूरब तक खुल गया। यह मार्ग लगभग एक सौ साल तक पूर्वी व्यापार में अपना एकाधिकार का सिक्का जमाये रहा।

आशा अन्तरीप का पूरब का मार्ग, अतलान्तिक महासागर के पूर्वी किनारे पर स्थित यूरोपियन राष्ट्रों में, परस्पर प्रतिस्पर्द्धा का कारण बन गया। इन राष्ट्रों में पुर्तगाल, हालैंड, फ्रांस और ब्रिटेन का नाम मुख्य है।

इंगलैंड, हालैंड और पुर्तगाल आशा अन्तरीप के रास्ते से ही पूरब के साथ व्यापार करके सन्तुष्ट थे, परन्तु फ्रांस दक्षिणी फ्रांस (मार्सैल्स) के पुराने व्यापार को फिर से चमकाने के लिये भूमध्यसागर के मार्ग का उपयोग करना चाहता था। इसी समय मिश्र के रास्ते से व्यापार करने की आज्ञा कोलबर्ट की लैवेन्ट कम्पनी को

मिल गई। इससे फ्रांस के व्यापारियों और राजनीतिज्ञों का ध्यान मिश्र की ओर खिंचा।

१६वीं शताब्दी में भारत के साथ यूरोप का व्यापार बहुत बढ़ा। विभिन्न संघर्षों और राजनैतिक उतराव-चढ़ावों के होने पर भी भारत के साथ व्यापार के लिए अनेक यूरोपियन कम्पनियां संगठित हुईं। इससे यूरोपियन राष्ट्रों में, विशेषकर फ्रांस और ब्रिटेन में, पूर्व के लिये प्रतिस्पर्द्धा पैदा हो गई। सन् १७६३ में कनाडा के छिन जाने से फ्रांस ने और सन् १७७६ में अमेरिकन उपनिवेशों के स्वतन्त्र हो जाने पर इंगलैंड ने शक्ति की वृद्धि के लिये एशिया को युद्ध का क्रीड़ास्थल बना डाला। १७५६ से १७६३ तक होने वाले सप्तवर्षी युद्धों और क्लाईव की विजयों (१७३७-१७५७) से भारत में फ्रांसीसी शक्ति का विनाश होकर अंगरेजों का एकाधिकार स्थापित हो गया। परन्तु पूरब की व्यापारिक मण्डियां अब भी अछूती बची हुई थीं, उन तक पहुंचने के लिये जो भी नये और सस्ते मार्ग का अवलम्बन करता उसे सफलता मिल सकती थी। ब्रिटेन इस प्रयत्न में लगा कि वह समुद्रों की रानी बनकर भारत के और पूर्व के जल-पथ पर राज्य करे। और फ्रांस ने मिश्र की ओर आंखें दौड़ाई, जिससे भूमध्यसागर का मार्ग पुनरुज्जीवित हो।

इसी समय फ्रांस का प्रसिद्ध विजयी सेनापति महावीर नैपोलियन, माल्टा होता हुआ, ब्रिटिश जंगी बेड़े से बचता हुआ, सन् १७६२ में मिश्र में पहुंचा। नैपोलियन न केवल मिश्र पर ही कब्जा करना चाहता था, वह स्वेज नहर काट कर भारत में भी अपनी

प्रभुता स्थापित करना चाहता था। नैपोलियन का कहना था —
'ब्रिटेन को तबाह करने के लिये यह जरूरी है कि हम मिश्र पर
कब्जा कर लें।'

नैपोलियन का मिश्र, भारत और पूर्व पर आधिपत्य का
स्वप्न, ब्रिटिश सामुद्रिक शक्ति ने, नील और अबूकर की लड़ाइयों
में मिटा दिया। एमीन्स की सन्धि ने नैपोलियन की मिश्री
महत्वाकांक्षा के परिच्छेद पर परदा ही डाल दिया। १८१४
की वियेना की सन्धि के अनुसार ६५ वर्ग-मील क्षेत्रफल
का माल्टा का द्वीप अंगरेजों को मिल गया। यह जिब्राल्टर
और स्वेज से लगभग समान दूरी पर है। इस की स्थिति सिसली
और ट्रिपोली की बोतलनुमा गर्दनों के बीच में है और
इस की सफेद चूने के पत्थर की चट्टानें इतनी मनमोहक हैं कि
उन्होंने नैपोलियन से बरबस कहलाया था — "मैं यह पसन्द
कर सकता हूं कि मेरे शत्रु मौन्टमैट्रीकी की चोटी (पेरिस का
एक भाग) पर हों, बनिस्बत इसके कि वे माल्टा में हों।'

नैपोलियन के फ्रेंच अभियान ने मिश्र के सम्बन्ध में
ब्रिटेन, फ्रांस और आस्ट्रिया की दिलचस्पी बढ़ा दी। मिश्र में अपने
प्रभुत्व को बढ़ाने के साथ ही ब्रिटेन अपनी पुरानी जगहों की उप-
योगिता भी समझने लगा। जिब्राल्टर पर ब्रिटेन का कब्जा
सन् १७१३ में ही हो चुका था, परन्तु १७८३ के लम्बे घेरे से
जिब्राल्टर पर ब्रिटिश धन का अपव्यय समझ कर ब्रिटेन के
तत्कालीन प्रधानमन्त्री पिट ने इसे फ्लेरिडा या प्लुरेटो के बदले
स्पेन को देना चाहा था, पर ब्रिटिश लोकमत ने ऐसा न होने

दिया। नैपोलियन के साथ युद्धों में, जिब्राल्टर का महत्व, ब्रिटिश जलीय-जंगी बेड़े की मरम्मत और अड्डे की दृष्टि से, ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और ब्रिटिश नौसेनापतियों के सामने आया। इस के बाद से जिब्राल्टर और माल्टा को जंगी बेड़े के दो महत्वपूर्ण और मजबूत अड्डे बनने का अवसर मिला। माल्टा सिसली से केवल ६० मील की दूरी पर है।

टैनजियर का बन्दरगाह भी ब्रिटेन को सन् १६१२ में मिला था, परन्तु खर्चीला होने की वजह से इसे मोरक्को को दे दिया गया था। आज बीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अवश्य ही अनुभव करते होंगे कि टैंजियर को हाथ से छोड़कर हमने भारी भूल की।

इसी समय मिश्र में भी यूरोपियन राजनीतिज्ञों को अपने प्रसार का अवसर मिला। सन् १८४६ में मिश्री खदीव (टर्की का मिश्र स्थित गवर्नर) मेहमतअली के मर जाने पर उसके जो उत्तराधिकारी हुए वह कमजोर फिजूलखर्च और अयोग्य व्यक्ति थे। अंगरेज और फ्रैंच बनियों ने इन खदीवों को भारी सूद पर भारी रकमें देकर दिवालिया बना दिया। इसी समय (सन् १८६८ में) मुहम्मद सैद के परवाना देने पर मुसिय डी लैसेप्स के प्रयत्नों के फलस्वरूप स्वेज का निर्माण पूर्ण हो चुका था।

सन् ५७ में भारतीय सिपाही विद्रोह को कुचलने के समय ब्रिटेन ने मिश्र और स्वेज के रास्ते की उपयोगिता भली भांति समझ ली थी। साथ ही वह मिश्र में अपना राजनैतिक प्रभुत्व भी चाहता था। अंग्रेजी सरकार ने सन् १८७५ में दिवालिये खदीव इस्माइल के स्वेज कम्पनी के सारे शेयर, जो स्वेज कम्पनी के लगभग

आ गे हिस्से थे, बहुत थोड़ी कीमत (४० लाख पाउण्ड) में खरीद लिये। इन हिस्सों से ब्रिटेन को पिछले वर्षों ३५ लाख पाउण्ड वार्षिक लाभ रहा है। इन हिस्सों द्वारा अंगरेजों ने जहां फ़ायदा उठाया, वहां वे भूमध्यसागर के पूर्वी द्वार स्वेज के मालिक भी बन गये।

परन्तु खदीव तो कर्ज में गले तक डूबा हुआ था। ब्रिटेन और फ्रांस ने बड़ी दया से (?) सन् १८७६ में इस्माइल के ६ करोड़ १० लाख पाउण्ड के कर्ज को निपटाने के लिये मिश्र का प्रबन्ध अपने संयुक्त हाथों में ले लिया। ब्रिटेन और फ्रांस की इस साम्राज्यवादी नीति का विरोध करते हुए मिश्र के राष्ट्रीय विचारों वाले युद्ध-सचिव अरबी पाशा ने ब्रिटिश और फ्रांसीसी कन्ट्रोलरों (नियन्त्रण रखने वालों) की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। विदेशी सत्ता को स्वीकार न करने का जवाब ब्रिटिश सेनाओं ने सिकन्दरिया पर जंगी बेड़े द्वारा गोलाबारी कर के दिया। फ्रांस ने इस कृत्य में ब्रिटेन का साथ न दिया। जल्दी ही ब्रिटेन ने मिश्र पर अपना सैनिक आधिपत्य (सन् १८८२) कायम कर दिया। इस के परिणामस्वरूप मिश्र में अकेले ब्रिटेन का बोलबाला होगया।

मिश्र पर ब्रिटेन के कब्जे से फ्रांस और रूस असंतुष्ट थे। टर्की की जगह मिश्र में ब्रिटेन सर्वोच्चता की जगह लेता जा रहा था। अन्त में (१६०४ में) ब्रिटेन ने फ्रांस और इटली से अलग अलग समझौते कर लिये। इसके अनुसार फ्रांस को मोरक्को में और इटली को ट्रिपोली में जो चाहें सो करने की स्वाधीनता मिल गई। मिश्र ब्रिटेन के लिए छोड़ दिया गया।

सन् १८७८ में बर्लिन के प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने टर्की की रूस के विरुद्ध मदद करने के फलस्वरूप ब्रिटेन को साइप्रस का १४० मील लम्बा ६० मील चौड़ा टापू दे दिया। साइप्रस के टापू की सैनिक दृष्टि से पूर्वी भूमध्यसागर में बहुत बड़ी उपयोगिता है। पिछला युरोपियन महायुद्ध छिड़ते ही, ब्रिटेन ने मिश्र को अपनी सीधी संरक्षा में ले लिया, और मिश्र पर से नाम मात्र की तुर्की संरक्षा उड़ा दी। मिश्री खदीव को सुल्तान की पदवी दी गई। समझा गया था, कि ब्रिटिश सेनायें महायुद्ध की समाप्ति तक ही मिश्र में रहेंगी, किन्तु यह न हुआ। मिश्र को संधिचर्चा में भी स्थान नहीं दिया गया, क्योंकि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के शब्दों में 'न तो वह लड़ाकू देश था न तटस्थ ही'। वह युद्धभूमि के हृदय में होता हुआ भी युद्ध में न था। मिश्र ब्रिटेन के लिए लड़ाई की क्रीड़ाभूमि बन गया था। ब्रिटेन के महायुद्ध के दिनों के व्यवहार की प्रतिक्रिया के रूप में मिश्र के नवयुवकों में राष्ट्रीय विचार पनप गये। जगलूल पाशा की अध्यक्षता में वफ्द-दल ने स्वायत्त-शासन की मांग की। वफ्द नेताओं को निर्वासित करने पर आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। अंत में वफ्द नेताओं को सरकार ने मिश्र में वापिस बुला लिया।

ब्रिटेन की सरकार ने २८ फरवरी सन् १६२२ को घोषणा की कि अब से मिश्र स्वतन्त्र स्वायत्त राज्य है और मिश्र पर से ब्रिटिश संरक्षा समाप्त होती है, परन्तु (एक बड़ा परंतु) निम्न ४ विषय सुरक्षित रक्खे जाते हैं—

१. मिश्र में ब्रिटिश साम्राज्य के यातायात के मार्ग की रक्षा।

२. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विदेशी आक्रमणों और हस्तक्षेपों से मिश्र की रक्षा।

३. अल्पमतों तथा विदेशी स्वार्थों की मिश्र में रक्षा।

४. सूडान का भविष्य।

सन् १९२२ से मिश्र इन सुरक्षित विषयों पर ब्रिटेन से बातचीत चलाता रहा है। ब्रिटेन अपने पूर्वी साम्राज्य की सुरक्षा के लिये स्वेज नहर और मिश्र-स्थित स्थल-मार्ग व वायु-मार्ग को सुरक्षित करना चाहता है, दूसरी ओर मिश्र अपनी स्वतन्त्रता की मांग करता है।

सूडान के प्रश्न पर भी खूब वादविवाद रहा। मिश्र का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन नील नदी पर निर्भर है और नील का दारोमदार सूडान-स्थित स्रोतों पर है। अतः मिश्र इन पर अपना अधिकार चाहता है।

१६ नवम्बर सन् १९२४ को सूडान के गवर्नरजनरल सर ली स्टाक की हत्या पर जगलूलपाशा को मिश्र का प्रधानमंत्रित्व छोड़ना पड़ा। सन् १९२६ के आम चुनाव में वफ्द दल जीता। जगलूलपाशा के मरने पर नहस पाशा वफ्द के नेता बने। राष्ट्रीयदल का जोर बढ़ते देखकर ब्रिटेन की सरकार ने कठपुतली सुल्तान फौद से पार्लमेंट भंग करवा दी और सन् '३० में फौद ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली।

अबीसीनियन युद्ध के समय (सन १९३५) ब्रिटेन ने सन् '२२ का विधान पुनः जारी करने के लिये कहा। आम चुनाव होने

पर वफ्द दल बहुमत में आ गया। अन्त में एक सन्धि हो गई। इसके अनुसार अलेक्जण्ड्रिया में अंगरेजी सेनाओं को आठ साल तक ठहरने का अधिकार मिल गया। सूडान में मिश्रियों का प्रवेश अबाध रूप से स्वीकार किया गया। हां, लड़ाई के अवसर पर ब्रिटेन को मिश्र में अपनी सेनायें रखने की स्वतन्त्रता दी गयी।

गत महायुद्ध में टर्की के हारने पर ब्रिटेन ने उससे मारमरा सागर के प्रान्तवर्ती किनारों तथा दर्रेदानियाल पर मित्र सेनाओं का कब्जा होना चाहा था, पर कमाल पाशा ने यह न होने दिया था।

सीरिया, फिलस्तीन, ट्रांसजोर्डन और अरब के अरब-भाषा-भाषियों को एक दूसरे से फाड़ने के लिये ब्रिटेन और फ्रांस ने 'धरोहर' की रीति निकाली। इसके अनुसार इन अशिक्षित देशों को 'सभ्य' करने का ठेका 'धरोहर' रूप में इन्होंने लिया था। परन्तु सीरिया, फिलस्तीन, ट्रांसजोर्डन, अरब, ईरान, और ईराक में ब्रिटेन और फ्रांस जो कुछ करना चाहते थे, पूरा न कर पाये। सीरिया को सन् ३४ में और फिलस्तीन को सन् ३२ में स्वायत्त शासन के अधिकार देने पड़े। अरब स्वतन्त्र हो गया। ईरान और ईराक में आजादी की लहर दौड़ गई।

सीरिया, फिलस्तीन, और ईराक की जो उपयोगिता पूर्व और पश्चिम के परस्पर व्यापार के लिये प्राचीन काल में थी, वह आज भी है। भूमध्यसागर तथा फारस की खाड़ी के बीच के स्थल तथा वायु-मार्गों और तैल के पाईप लाइनों के नियन्त्रण के लिये ही ब्रिटेन ने इन देशों पर अधिकार किया था। ब्रिटेन की

'धरोहर' की नीति, यहां की जातियों के पारस्परिक स्वार्थों को उभाड़कर लड़ाने के कारण, सीरिया और फिलस्तीन दोनों ही जगह असफल रही। ईराक की मौसुल तेल-खानों को ब्रिटेन अपने आर्थिक हितों के कारण छोड़ना नहीं चाहता। वह उन स्थानों पर, ब्रिटिश साम्राज्य के यातायात का मार्ग होने के कारण चिपटा रहना चाहता है। ब्रिटिश साम्राज्य का जल-मार्ग होने के कारण स्वेज का जो महत्व है; बगदाद और बसरा का महत्व वायुमार्ग होने के कारण उससे कुछ कम नहीं है।

उपर्युक्त पृष्ठों में हमने देख लिया कि किस तरह ब्रिटेन अपने साम्राज्य की जीवन-रेखा को दृढ़ बनाने में लगा हुआ है और किस तरह वह सब महत्वपूर्ण नाकों को अपने कब्जे में किये हुये है।

जिब्राल्टर, स्वेज और पश्चिमी एशिया के टर्की, फिलस्तीन, सीरिया व ईराक प्रदेश उसकी इस जीवन-रेखा के महत्वपूर्ण नाके हैं। अदन, स्वेज, अलेक्जण्ड्रिया, साईप्रस, क्रीट (यूनान-इटली युद्ध में यहां ब्रिटेन का कब्जा होने के बाद से), माल्टा और जिब्राल्टर उसकी जीवन-रेखा बनाने वाले कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। जहां प्रवेश द्वारों का महत्व है, वहां रेखा के इन बिंदुओं का स्थान भी कुछ गौण नहीं है। इनके होने से ही ब्रिटिश साम्राज्य की जीवन-रेखा की लड़ी जुड़ सकी है। ब्रिटेन की इस जीवन-रेखा पर उत्पन्न हुए संघर्ष को हम अगले पृष्ठों में देखेंगे।

६

अन्य राष्ट्रों के दावे

भूमध्यसागर के नाकों और महत्वपूर्ण स्थानों पर, ब्रिटिश प्रभुत्व के विरोध में, यूरोपियन राष्ट्रों और मिश्र व टर्की सरीखे दूसरे राष्ट्रों के दावों की चर्चा, पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय वाद-विवादों में आती रही है, इस लिये हम यहां पर दूसरे राष्ट्रों के दावों और उन द्वारा उठाई गई समस्याओं पर विचार करेंगे।

भूमध्यसागर की वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट राष्ट्रों में सर्वप्रथम इटली है। इटली की समस्या संक्षेप में यह है —

फ्रांस और स्पेन के समुद्री किनारे अतलांतिक और भूमध्य दोनों सागरों पर हैं। यदि किसी दिन भूमध्यसागर की नाकाबन्दी

कर दी जाय और जिब्राल्टर और स्वेज के द्वार व्यापार के लिये इंगलैंड बंद कर दे तो स्पेन और फ्रांस का विनाश न होगा, क्योंकि ऐसी दशा में भी वे समुद्र तक पहुंच सकते हैं और अतलान्तिक के किनारों द्वारा स्वेच्छापूर्वक अपनी गति-विधि जारी रख सकते हैं। भूमध्यसागर की दूसरी महाशक्तियों से सर्वथा भिन्न रूप में, इटली एक पुल के समान भूमध्यसागर में घुसा हुआ है और इटली के समस्त तटों पर यही सागर लहराता है। इटली की स्वाधीनता ही नहीं, अपितु जीवन भी, उन राष्ट्रों की कृपा पर आश्रित है, जिनके हाथों में जिब्राल्टर और स्वेज की कुंजी है, और जो किसी राष्ट्रीय भावना से नहीं बल्कि साम्राज्यविस्तार की इच्छा से माल्टा और साइप्रस को सम्भाले बैठे हैं। यदि भूमध्यसागर के सिंहद्वारों के रक्षक लड़ाई पर तुल कर, एक आधुनिक सभ्य देश के जीवन-धारण के लिये उपयोगी अन्न, कोयला, तैल, पेट्रोल और अन्य कच्चे सामान के आयात को रोक दें तो कुछ ही सप्ताह की नाकाबन्दी में ४ करोड़ १० लाख इटालियन भूखे मारे जा सकते हैं।

इटली अपनी विकट भौगोलिक परिस्थिति के कारण ही भूमध्यसागर का कैदी बना हुआ है। कच्चे सामान के अत्यन्ताभाव तथा निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमध्यसागर की समस्या उसके सामने गम्भीर रूप धारण किये खड़ी है।

अबीसीनिया के युद्ध के समय (सन् ३५) यूरोपियन राजनीतिज्ञों की यह आम धारणा थी कि आर्थिक प्रतिबन्ध लगा

कर इटली को अबीसीनियन अभियान से रोका जा सकता है। यूरोपियन, विशेषतः ब्रिटिश और फ्रेंच, सरकारों की यह भी निश्चित सम्मति थी कि यदि इटली के अबीसीनियन अभियान के विरोध में कारगर प्रतिबन्ध लगा दिया अर्थात् पैट्रोल गोला-बारूद और अन्य युद्ध-सामग्री को स्वेज और जिब्राल्टर में रोक दिया जाता तो इटली से लड़ाई के लिये तैयार होना पड़ता। मित्र-राष्ट्र सैनिक या कठोर उपायों के अवलम्बन से बचना चाहते थे, क्योंकि वे अपनी सैनिक कमजोरी को उस समय भली-भांति अनुभव करते थे। दूसरी ओर इटली की सेनायें लीबिया की तरफ से कैरो पर हमला करने के लिये तैयार खड़ी थीं।

इटली के अबीसीनिया जीतने के बाद, इटली की ओर से, स्वेज की समस्या बार-बार सामने लायी गयी है। इटली की ओर से कहा जाता है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिये स्वेज में से निर्बाध यातायात आवश्यक है, तो अबीसीनियन साम्राज्य का तो जीवन ही सब समयों में स्वेज में से अबाध यातायात पर आश्रित है। इटालियनों का कहना है कि युद्ध के समय तो केवल सिपाहियों, बन्दूकों और लद्दू जानवरों को ही स्वेज नहर में से गुजरना पड़ा था, परन्तु अब लड़ाई के बाद उस साम्राज्य के निवासी औपनिवेशिकों और सेना के लिये बिछौने से लेकर लोहे की पेटी तक और बूट के फीते से सीमेंट तक प्रत्येक आवश्यक सामान को स्वेज के रास्ते गुजर कर ही वहां पहुंचना होता है। अबीसीनिया आज भी आत्म-निर्भर न होकर दूसरों पर आश्रित है और उसकी जरूरत की चीजें

सिवाय स्वेज नहर के और किस मार्ग से वहां जायंगी ? जब तक उस मार्ग का नियन्त्रण मिश्र में स्थित एक दूसरी शक्ति के हाथ में हो तब तक इटली सुख की नींद कैसे ले सकता है ?

इस संकट से निकलने के लिये इटालियन राजनीतिज्ञों के हाथ में तीन ही रास्ते हैं। पहला यह कि इटली ब्रिटेन की दोस्ती पर भरोसा रक्खे। दूसरा यह कि पूर्वी अफरीका के इटालियन उपनिवेशों के साथ यातायात का कोई अन्य सीधा रास्ता निकाला जाय और तीसरा उपाय यह है कि अपने हितों की रक्षा के लिये स्वेज के नियन्त्रण में इटली भी अपना हाथ रखे। अबीसीनिया और लीबिया के बीच में सीधा रास्ता निकालने की समस्या कठिन है; क्योंकि छोटे से छोटा भी जो रास्ता उक्त दोनों इटालियन उपनिवेशों को जोड़ सकेगा वह कम से कम एक हजार मील होगा, और उसे दुर्गम और रेतीली भूमि में से जाना पड़ेगा।

पहला उपाय कि इटली ब्रिटेन की मित्रता पर विश्वास रक्खे, इटली जैसे महत्वाकांक्षी राष्ट्र को जंच ही नहीं सकता। ब्रिटेन का मित्र बनकर और वर्तमान साम्राज्य में बन्धकर बैठना इटली पसन्द नहीं कर सकता। अतः इटली के लिये केवलमात्र एक रास्ता था कि वह भी वहां प्रवेश पाता जहां ब्रिटेन ने पहले से ही अड्डा जमाया हुआ था। इटली लगातार प्रोपेगैंडे के द्वारा मिश्र में अपना स्थान बना लेना चाहता था। साथ ही वह स्वेज नहर के प्रबन्ध में भी घुसना चाहता था।

इटली के राजनीतिज्ञ अपनी अबीसीनियन समस्या उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यदि स्पेन हमारे जीवन-निर्वाह के लिए इसलिए जरूरी है कि जिब्राल्टर के रास्ते इटली का आयात गुजरता है और यदि ट्यूनिस हमारे लिये सैनिक और औपनिवेशिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, तो स्वेज का रास्ता अपनी उपयोगिता की दृष्टि से जिब्राल्टर और ट्यूनिस दोनों को ही पीछे छोड़ जाता है।

मुसोलिनी और इटली की वर्तमान सरकार, जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य की नाकाबन्दी सह सकते हैं, वे ट्यूनिस पर दावे को भी छोड़ सकते हैं, परन्तु अबीसीनिया छोड़ने और स्वेज के नियन्त्रण की मांग को छोड़ने का सीधा मतलब इटालियन राजनीतिज्ञ समझते हैं कि उस आधार को ही छोड़ना होगा, जिस पर उनके सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन का भविष्य अव-लम्बित है।

इटली अपनी समस्या को सुलझाने के लिए स्वेज के नियन्त्रण में अपना हाथ चाहता है, जिससे अबीसीनियन साम्राज्य पर इटालियन खर्चा (स्वेज के टैक्सों के रूप में) कम हो। इसका जवाब स्वेज कम्पनी और मिश्र यह देते हैं कि स्वेज शुरू से अन्त तक पूरी तरह एक मिश्री कार्य है, इसके नियन्त्रण और प्रबन्ध कार्य के लिये भी मिश्र ही जिम्मेदार है, दूसरे राष्ट्रों को इससे कोई सरोकार नहीं।

अबीसीनियन युद्ध के बाद इटली द्वारा स्वेज का प्रश्न निरन्तर पेश किए जाने पर ब्रिटेन ने इसी में बुद्धिमत्ता समझी कि

मिश्र को कुछ ज्यादह देकर मना लिया जाय । इसी लिए स्वेज-नहर के डाइरेक्टरों में दो मिश्रियों को स्थान दिया गया। स्वेज नहर कम्पनी ने प्रतिवर्ष मिश्री सरकार को तीन लाख पाउंड टैक्स के रूप में देना स्वीकार किया। साथ ही ब्रिटिश सरकार ने यह भी मान लिया कि स्वेज नहर के क्षेत्र में फौज की बारकें तैय्यार होते ही ब्रिटिश सेनायें मिश्र में से चली जायेंगी । ब्रिटेन तथा स्वेज कम्पनी ने यह भी मान लिया कि स्वेज नहर की रक्षा करने वाली सेना क्रमशः पूर्णतया मिश्री कर दी जायगी । इसके अनुसार सन् १९३८ में स्वेज कम्पनी के एक तिहाई कर्मचारी मिश्री थे और सेना में मिश्री अफसर भी लिये जाने लगे थे। सेना के मिश्रीकरण की पूर्ति स्वेज कम्पनी के निन्यानवे-साला पट्टे की समाप्ति (सन् १९६८) से पूर्व हो जानी चाहिये।

मिश्र को जो भी अधिकार, बहुत मामूली ही, मिले, उनका एक बहुत बड़ा कारण ब्रिटेन को इटली का भय और इटली का मिश्र में प्रोपेगैंडा था । ब्रिटेन यह टुकड़ा फेंककर इटली के आक्रमण के समय मिश्र की सहायता, कम से कम निष्क्रिय तटस्थता, प्राप्त करना चाहता था । वर्तमान घटना-चक्र से प्रकट है कि ब्रिटेन को अपने इस मनसूबे में पूर्ण सफलता मिल गई।

इटली की हालत उस मकान वाले की सी हो गई, जिसने बहुत खर्च कर मकान के दो पार्श्व तो बना लिये, परन्तु बीच की जमीन के हठीले जमींदार ने बीच में मकान का प्रमुख भाग

बनने ही नहीं दिया। अबीसीनिया और लीबिया के इटालियन साम्राज्य, विना मिश्र का महत्वपूर्ण भाग हाथ में आये, सुरक्षित नहीं हो सकते और असल में मिश्र में अधिकार प्राप्ति की इच्छा ही मुसोलिनी की अबीसीनियन हलचल का वास्तविक रहस्य था।

इटली अपने प्रादेशिक विस्तार और कच्चे सामान की प्राप्ति के लिये अभी तक निम्न लक्ष्यों पर दृष्टि रखता रहा है :—

१. ऐसे स्थानों पर कब्जा किया जाय, जिनसे उसकी आत्मरक्षा नाकाबन्दी के समय हो सके।

२. युद्ध के दिनों में नाकाबन्दी के कारण उसे भूमध्य-सागर का कैदी न बनना पड़े।

३. उपर्युक्त स्थान लड़ाई की धमकी से ही मिल जायें। इनके लिये कोई बड़ी लड़ाई न करनी पड़े।

४. छोटी लड़ाई करनी भी पड़े तो वह खर्चीली न हो और उसमें सफलता का निश्चय हो।

५. इस तरह की सफलता का श्रेय इटली की जनता अपनी सरकार को दे।

इटली इन्हीं लक्ष्यों के अनुसार उत्तरी अफरीका और अबीसीनिया में अपनी नीति को बदलता रहा है और उसने इनकी पूर्ति में सफलता भी प्राप्त की है।

सन् १९११ में इटली ने, बाल्कन राष्ट्रों द्वारा यूरोप के मरीज टर्की पर हमला होता देख, उत्तरी अफरीका में ट्रिपोली (वर्तमान नाम लीबिया) पर कब्जा कर लिया और टर्की के

विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। टर्की तो बेचारा पहले ही परेशान बैठा था, उसने इटली की मांगों को स्वीकार कर लिया।

सन् १६१२ में, बाल्कन राष्ट्रों के युद्ध के दिनों में ही, इटली ने ट्रिपोली के युद्ध के मसले पर पूर्वी भूमध्यसागर के डोडकनीज़ या द्वादश द्वीपों और रोहडेज द्वीपों पर कब्जा कर लिया। इटली की साम्राज्यवादी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिये पूर्वी भूमध्यसागर के ये द्वीप काफी महत्व रखते हैं। एशिया माइनर, कृष्ण सागर के मार्ग और स्वेज नहर पर देखरेख के लिये इन द्वीपों में सैनिक अड्डे बनाये जा सकते हैं और इन पर पिछले वर्षों में समुद्री और हवाई अड्डे बनाये भी जा चुके हैं। मिश्र के युद्ध में पराजित होने से पहले, रोहडेज से लीबिया के बन्दरगाह तोब्रुक तक आकाशी यातायात द्वारा इटली पूर्वी भूमध्यसागर पर अधिकार का स्वप्न ले रहा था। सिसली से पैनटेलेरिया तक और वहां से लीबिया तक वायु-मार्ग पर कब्जा कर भूमध्यसागर के मध्यवर्ती रास्ते को इटली बाधाशून्य बनाना चाहता था।

फ्रेंच उत्तरी अफरीका के उत्तर-पूर्व की छोटी सी नोक ट्यूनिस पर इटली केवल इसलिये कब्जा नहीं करना चाहता था कि वहां इटालियन रहते हैं; अपितु वहां कब्जा करने से एक उपजाऊ और सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान भी उसे मिल जाता। वहां से मातृभूमि पर हमले का डर सदा बना रह सकता है।

सन् ३६ में स्पेन के गृहयुद्ध में, प्रजातन्त्र के विरोधी जनरल फ्रांको को आश्रय और सहायता देने में, इटली का अभि-

प्राय केवल यही था कि किसी तरह जिब्राल्टर की नकेल उसके हाथों में आ जाय।

अबीसीनिया-विजय, स्वेज में नियन्त्रण की मांग, डोडकनीज में सैनिक तैयारियां और स्पेन में डिक्टेटरशाही की सहायता के काम, इटली के तानाशाह मुसोलिनी ने, अपने राष्ट्र की परिस्थिति को नाकाबन्दी के दिनों में मजबूत करने के लिये ही किये थे।

भूमध्यसागर की वर्तमान परिस्थिति से तथा वहां पर ब्रिटिश प्रभुत्व से असंतुष्ट राष्ट्रों में दूसरा स्थान जर्मनी का है। यूरोपियन राष्ट्रों की साम्राज्य-विस्तार की दौड़ में जर्मनी एक पिछला घुड़सवार है। उसका कहना है कि हमें भी 'सूरज के नीचे' फैलने के लिये स्थान मिलना चाहिये। समुद्रों का राजा और धनाढ्य पूर्व के सिंहद्वारों का रक्षक ब्रिटेन जर्मनी का प्रबल शत्रु और प्रतिद्वन्द्वी है। जर्मनी अपने शत्रु को मात देना चाहता था। इसके लिये उसने इस शताब्दी के आरम्भ में प्रबल जङ्गी बेड़ा बनाना शुरू किया, कील नहर का निर्माण किया और पूर्व में अपने विस्तार के लिये यूरोपियन आर्थिक दोहन से बचे हुए ओटोमन (उस्मानी) साम्राज्य की ओर कदम बढ़ाया।

मिश्र पर ब्रिटेन के आधिपत्य को तथा स्वेज नहर के पूर्वी जल मार्ग को, मार्कोपोलो आदि के स्थल-मार्ग पर चलकर नुकसान पहुंचाया जा सकता है, यह जर्मन राजनीतिज्ञों ने भली भांति समझ लिया था। इसीलिये वे बर्लिन से बगदाद तक

रेल-मार्ग बनाकर उसे फ़ारस की खाड़ी तक पहुंचा देना चाहते थे। इस नवीन योजना द्वारा, जहां टर्की पर जर्मन आर्थिक-प्रभुत्व स्थापित हो जाता, वहां मिश्र में ब्रिटेन की स्थिति को भी धक्का पहुंच सकता था; मिश्र की क्षति, न केवल स्वेज, भारत और सुदूरपूर्व के ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा कर देती, अपितु मध्य और पूर्वी अफरीका के क्षेत्रों से भी ब्रिटेन को हाथ धोना पड़ता।

जिस प्रकार एक शताब्दी पूर्व फ्रांस में नैपोलियन ने मिश्र को माध्यम बनाकर ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट करना चाहा था, ठीक वैसे ही बीसवीं शताब्दी में जर्मन कैसर ने मिश्र पर गृध्र-दृष्टि डालकर ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट करने का इरादा किया था।

अंगरेज़ों के भाग्य से कैसर की इस महत्वाकांक्षा का उन्हें जल्दी ही पता चल गया। उन्होंने बर्लिन-बगदाद रेल को ठेठ फ़ारस खाड़ी तक न पहुंचने दिया और इस तरह जर्मनों की मिश्री अभियान की तैयारी अधूरी रह गई। गत महायुद्ध के दिनों में तुर्की सेना के प्रधान जर्मन सेनापति जनरल लीमैन-वान-सैण्डर ने, बिना यातायात के साधनों के, मिश्र की विजय को असम्भव बतलाया था। वही हुआ भी। मिश्र पर आक्रमण करने वाली तुर्की सेना को वापिस लौटना पड़ा।

बगदाद और हैजाज रेल के जर्मन स्वप्न तो अधूरे रह गये, पर गत महायुद्ध के बाद, भूमध्यसागर और यूरोप को जोड़नेवाली बगदाद रेल और इस रेल को मक्का-मदीना से मिलानेवाली हैजाज रेल बन चुकी हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का

भी उद्देश्य पिछले वर्षों में यही हो गया है कि एशिया और अफरीका के रास्तों का नियन्त्रण किया जाय । एशियाई मार्ग आगे बढ़ाने पर हिन्दुस्तान पहुंच सकता है, और अफरीकन मार्ग अफरीका महाद्वीप के आर पार, कैरो से कैपटाउन तक जाता है। इस तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद को मिलानेवाली कड़ी तैयार हो जाती है। परन्तु हवाई जहाजों और मोटरों ने रेल की योजना को बहुत धक्का पहुंचाया है। अंगरेज लोग अब अपने साम्राज्य को मजबूत करने के लिये वायु का आश्रय ले रहे हैं। दूसरी ओर उनके प्रतिद्वन्द्वी धुरी-राष्ट्र जर्मनी और इटली, स्पेन, बाल्कन राष्ट्रों और पूर्वी अफरीका तथा उत्तरी अफरीका में अपनी स्थिति मजबूत कर, केवल ब्रिटिश प्रतिबन्धों को ही दूर करना नहीं चाहते हैं अपितु ब्रिटिश साम्राज्य को जड़ से उखाड़ देना चाहते हैं।

———

७

भविष्य

द्वितीय यूरोपियन महायुद्ध छिड़े हुए इस समय लगभग सत्रह मास होते हैं। इस बीच में जर्मन सैनिक-यन्त्र के नीचे पौलैण्ड, नारवे, डेन्मार्क, हालैंड, लक्समबर्ग, बेलजियम और फ्रांस की शक्तियां दब चुकी हैं। जर्मनी की सैनिक-शक्ति के दबदबे में आकर रूमानिया और हंगरी भी उसके मित्रराष्ट्र बन चुके हैं और फ्रांस जैसी महाशक्ति को कुचला जाता देख लूट में हिस्सा बंटाने के लिये इटली जर्मनी का साझीदार बन चुका है।

दूसरी ओर जर्मनी के मुकाबिले पर अकेला ब्रिटेन है। हां, ब्रिटेन के अपने राष्ट्र के साथ उसका विशाल साम्राज्य है, जिस का विस्तार समस्त भूमण्डल के चतुर्थान्श पर है। संसार का

सबसे धनी देश संयुक्तराष्ट्र अमेरिका भी उसे हर तरह की युद्ध-सामग्री व सहायता देने को तैयार है।

इस तरह इस मल्लयुद्ध के दो पहलवान हैं। पहला जर्मनी अपने आप में बहुत शक्तिशाली, साहसी और दृढ़प्रतिज्ञ है, परन्तु खुराक और माली हालत की दृष्टि से कमजोर है। इसका विरोधी बहुत बड़े कुनबे और समर्थकों के बल से बलवान् सामर्थ्यशाली ब्रिटेन है। पहले में शारीरिक शक्ति की मात्रा अधिक है, तो दूसरा साधनसम्पन्नता, ऐश्वर्यशालिता के कारण पहले से अधिक सामर्थ्य रखता है।

जर्मनी पश्चिम में जितना बढ़ सकता था, गत जुलाई मास तक बढ़ चुका है। आगे बढ़ने की उसकी अभिलाषा तो जरूर है परन्तु ब्रिटेन और उसके बीच में वरुण देवता (२१ मील का समुद्र) हैं, जिन्हें लांघ कर सफलतापूर्वक ब्रिटेन में उतरने लायक आवश्यक समुद्री जंगी बेड़ा इस समय उसके पास नहीं है।

ऐसी दशा में जर्मनी के लिये दो ही मार्ग सम्भव हैं, एक तो यह कि वह ब्रिटेन पर आक्रमण का आतङ्क सदा बनाये रक्खे और ब्रिटेन युद्ध-सामग्री के कारखानों और जंगी तथा व्यापारिक जहाजों को, अपने हवाई जहाजों तथा अन्य साधनों से नष्ट करने का प्रयत्न करता रहे। इससे ब्रिटेन की बहुत बड़ी शक्ति सम्भावित जर्मन आक्रमण को रोकने के लिये ब्रिटेन में फंसी रहेगी। जर्मनी का दूसरा सम्भावित कदम यह है कि बाल्कन राष्ट्रों,

फ्रांस और स्पेन को अपने अनुकूल बना कर न केवल भूमध्यसागर के प्रवेश-द्वारों पर अधिकार करने की चेष्टा करे, साथही अफरीका तथा निकट पूर्व के ब्रिटिश साम्राज्य के मर्मस्थलों पर भी चोट पहुंचाने का यत्न करे। पिछले सात महीने से जर्मनी इसी उद्योग में व्यस्त है। इस बीच वह अपने आक्रमण का आतङ्क बैठाने के लिये रात दिन ग्रेट-ब्रिटेन पर बम व अग्निवर्षा कर रहा है और अपनी पनडुब्बियों तथा वायुयानों की सहायता से ब्रिटेन की नाकाबन्दी करने की कोशिश कर रहा है। दूसरी तरफ हर हिटलर कूटनीतिक चालों में भी बाजी मारने की भरसक चेष्टा कर रहा है। अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र) लड़ाई से अलग ही रहे, इसलिये उसने सन् १६४० की २७ सितम्बर को जापान और इटली के साथ दशवर्षीय समझौता किया, जिसके अनुसार किसी तीसरे राष्ट्र के (जो कि सम्भवतः संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ही है) युद्ध में कूद पड़ने पर जापान उसे सुदूरपूर्व में ही उलझाये रक्खे। रूस का सहयोग लेने और युद्ध के दिनों में उससे युद्ध-सामग्री और कच्चे सामान के निरन्तर आयात की गारंटी के लिए हर हिटलर ने नवम्बर मास में रूस के प्रधानमन्त्री श्री मोलोटोव को बर्लिन निमन्त्रित किया था। रूसी प्रधानमन्त्री अपने साथ विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों की असाधारण संख्या लेकर बर्लिन पहुंचे थे। कूटनीतिक बातचीत के लिए इतना लम्बा चौड़ा स्टाफ साथ ले लाने की जरूरत नहीं होती। उसके लिए तो श्री मोलो-टोव ही रूस का प्रतिनिधित्व बखूबी कर सकते थे। विशेषज्ञों की इस बर्लिन-वार्ता तथा कूटनीतिक चर्चा के फलस्वरूप ११

जनवरी सन् १९४१ को रूस और जर्मनी में व्यावसायिक सन्धि तथा दोनों देशों की सरहदों के बारे में मित्रतापूर्ण समझौता हो गया है।

रूस की वैदेशिक-नीति देर से रहस्यपूर्ण एवं अन्धकार में लीन रही है। रूस किस राष्ट्र का मित्र और किसका शत्रु है, जारों के शासन काल से सोवियत् के वर्तमान शासनसूत्र तक इस बारे में कभी भी ठीक राय नहीं बनाई जा सकी। रूस की ऐसी संदिग्ध वैदेशिक-नीति होने के बावजूद पिछले दो सालों से जर्मनी व रूस के सम्बन्ध बहुत सुधर गये हैं। इस समय में रूस जर्मनी को यदि कोई सक्रिय सहयोग नहीं देता रहा तो उसका उससे विरोध भी नहीं रहा।

रूस की सहायता तथा तटस्थता, दोनों ही जर्मनी के वर्तमान सूत्रधारों के लिये आवश्यक हैं। रूस का सक्रिय-सहयोग न भी मिले तो भी उसकी व्यावसायिक व आर्थिक सहायता जर्मनी के युद्धकालीन जीवन-वहन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। जर्मनी की आज यदि सबसे बड़ी कोई कमजोरी है तो खाद्य-सामग्री और युद्धोपयोगी यन्त्रों व ईन्धन के लिये आवश्यक कच्चे सामान का उसके पास आवश्यक मात्रा में न होना ही है। उसे रूस से इस दिशा में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। दूसरे, रूस की तटस्थता से जर्मनी अपने पूर्वी सीमान्त की तरफ से निश्चिन्त रह सकता है।

रूस की इस सहायता के आश्वासन के बदले में, सम्भव है, हर हिटलर रूस को मध्यपूर्व के राष्ट्रों में खुल कर खेलने की

छूट दे दे। संसार की मण्डियों तक पहुंचने के लिये वर्ष भर काम आने वाले खुले बन्दरगाहों की रूस को बहुत समय से चाह रही है। दर्रे-दानियाल में यातायात की सुविधाओं तथा फारस और ईरान में प्रभाव क्षेत्रों की स्थापना से रूस की यह पुरानी चाह पूरी हो सकती है। परन्तु यह काम ब्रिटेन और जर्मनी में से किसी की सहायता से ही हो सकता है।

यदि इस प्रश्न पर रूस और जर्मनी में एका हो जाय तो हर हिटलर, पूर्व की ओर से निश्चिन्त होकर, जर्मन सेनाओं से बाल्कन राष्ट्रों को पार करवाता हुआ पूरब की ओर बढ़ सकता है। बल्गेरिया को एजियन सागर के बन्दरगाह देकर उसे अपने यहां से जर्मन सेनाओं को गुजरने देने के लिये तैयार किया जा सकता है। यूगोस्लेविया जर्मन-यन्त्रित सेनाओं और जर्मन 'फिफ्थ कालम' कार्रवाइयों के सामने टिक सके, यह सम्भव नहीं दीखता। रूस की सहायता से टर्की की तटस्थता स्थिर रक्खी जा सकती है। सीरिया हतभाग्य फ्रांस का उपनिवेश है। वहां पर यदि जर्मन सेना बढ़ी चली जाय तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। प्रसिद्ध जर्मन सैनिक-विशेषज्ञ डाक्टर पाल-रोहर-बैंक ने पिछले यूरोपियन महायुद्ध से भी पहले लिखा था—"यूरोप से स्थलमार्ग द्वारा हमला कर एक मिश्र द्वारा ही ब्रिटेन को पूर्व में लंगड़ा किया जा सकता है। मिश्र की क्षति न केवल स्वेज तथा वहां से भारत और सुदूरपूर्व के ब्रिटिश साम्राज्य का ही खातमा कर देगी, अपितु उसे मध्य और पूर्वी अफरीका के भी अपने प्रभावक्षेत्रों से हाथ धोना होगा।" आगे

आपने टर्की के सहयोग का उल्लेख करते हुए कहा था—"एशिया-माइनर, सीरिया तथा बगदाद को जाते हुए व्यापक रेल-संगठन पर जब तक जर्मन पक्ष-पातियों का पूरे तौर से अधिकार नहीं हो जाता, तब तक सीरिया पर होने वाले ब्रिटिश आक्रमण को तहस-नहस कर मिश्र पर कब्जे का स्वप्न नहीं लिया जा सकता।"

पिछले यूरोपियन महायुद्ध में सीरिया, फिलस्तीन और मिश्र के बीच यातायात की समुचित व्यवस्था न होने के कारण ही मिश्र और स्वेज पर तुर्कों का हमला असफल रह गया था। गत महायुद्ध के बाद अंगरेजों ने अफरीका और पश्चिमी एशिया के बीच यातायात के संगठन को दृढ़ कर दिया है, साथ ही वायु-मार्ग से भी जर्मन-आक्रमण स्थलमार्ग के हमले को सहायता दे सकता है। जर्मन आक्रमण की सफलता के लिये सबसे पहली आवश्यकता रूस की सहायता से टर्की को तटस्थ करवा देना है। पृष्ठभाग में टर्की के चुपचाप बैठे रहने की गारन्टी पर ही जर्मन आक्रमण सफल हो सकता है और यह गारन्टी रूस की सहायता से ही उसे मिल सकती है।

जर्मन स्थलीय-आक्रमण की सफलता के लिये दूसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि जर्मन सेनायें फ्रांस और स्पेन में से गुजर कर जिब्राल्टर पर आक्रमण करें और वहां से स्थल-मार्ग द्वारा ही अफ्रीका में पूरब और दक्षिण की ओर बढ़ जांय। जर्मन सेनायें लीबिया की इटालियन सेना का सहयोग लेकर पूर्व में लीबिया की ओर बढ़ सकती हैं। और दक्षिण में बढ़कर पश्चिमी अफरीका के डाकर जैसे बन्दरगाहों पर कब्जा कर सकती

हैं। यह बन्दरगाह दक्षिण अमरीका से हवाई और जलीय यातायात का सम्बन्ध बनाये रखने के लिये बहुत जरूरी है। यदि जर्मनी इस मार्ग पर चलने में सफल हो जाय तो वह दक्षिण में गिनी की खाड़ी तक इस मार्ग से पहुंच सकता है। यह हो जाने पर अतलान्तिक महासागर का अधिकांश पूर्वी तट हिटलर के हाथ में आ सकता है।

इन स्थल मार्गों के अतिरिक्त एक और भी रास्ता है, जिस का उपयोग करके जर्मन सेनायें उत्तरी अफरीका में सैनिक-अभियान का प्रारम्भ कर सकती हैं। वह मार्ग सिसली के इटालियन द्वीप से पैनटेलेरिया होता हुआ उत्तरी अफरीका को जाता है। इससे न केवल माल्टा के ब्रिटिश अड्डे की अवस्थिति ही संकट में पड़ जाती है; अपितु जिब्राल्टर से स्वेज नहर तक की ब्रिटिश-जीवन-रेखा भी खतरे में पड़ जाती है। यदि सिसली और पैनटेलैरिया तथा लीबिया के मार्ग की सुरक्षा पूर्ण रूप से करने में जर्मन वायुसेना और पनडुब्बियां समर्थ हो गईं तो भूमध्यसागर के ब्रिटिश प्रभाव पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। इस मार्ग के कारगर हो जाने पर पश्चिमी-एशिया के स्थलमार्ग के उपयोग का खतरा जर्मन सैन्य-विशेषज्ञ उचित न समझेंगे। पश्चिमी-एशिया के यातायात के सम्पूर्ण साधनों पर ब्रिटिश प्रभुत्व होने से उस मार्ग द्वारा मिश्र पर का आक्रमण अधिक कठिन होगा। दूसरी ओर सिसली और उत्तरी अफरीका में अन्तर कम होने से सैनिक शक्ति का अपव्यय भी कम होगा।

इस जर्मन-योजना में कुछ ऐसे भी छिद्र हैं, जिनके भरे

बिना सब कुछ अधूरा रह जाना सम्भव है। सबसे पहला और सबसे बड़ा छिद्र जर्मन-योजना के लिये जर्मनी का अपना साझीदार इटली है। इटली-ग्रीक युद्ध में तथा लीबिया पर ब्रिटिश आक्रमण में इटालियन निर्बलता का परिचय भली प्रकार मिल चुका है। कहा जाता था कि इटली की सेना बहुत बड़ी और शक्तिशालिनी भी है। इटालियन जंगी बेड़ा फ्रांस के पतन के बाद भूमध्यसागर में संख्या और शक्ति की दृष्टि से ब्रिटिश बेड़े से मजबूत कहा जाता था। इटली के इस युद्ध में पड़ने से अब तक, इटालियन स्थल और जल-सेना की अशक्ति तथा असामर्थ्य का ही प्रदर्शन होने से, इटली जर्मनी के गले का बोझ बनता दीखता है। मालूम होता है कि इटली ही जर्मनी को डुबाने वाला सिद्ध होगा। कभी कभी तो ऐसा अनुभव होता है कि इटली का साम्राज्य पानी के बुलबुले के समान विलीन होने जा रहा है। इटली की नाकाबन्दी करके उसे भूखा मारा जा सकता है, उससे अबीसीनिया छीना जा सकता है, लीबिया पर अंगरेजी सेनायें चढ़ाई कर सकती हैं और स्वेज नहर उस के लिये बन्द की जा सकती है। पूर्वी भूमध्यसागर के डोडकनीज के द्वादशद्वीपों और रोहडेज के द्वीप पर ब्रिटिश बेड़ा कब्जा कर सकता है और अंगरेजी सेना इटली में से हो कर जर्मनी पर भी हमला कर सकती है।

इन सब सम्भावनाओं को रोकने के लिये जर्मनी के पास दो मार्ग थे। पहला यह था कि जर्मन मदद से इटली की शक्तिहीनता और असामर्थ्य को पूर्ण किया जाय। दूसरा रास्ता

यह था कि अनधिकृत फ्रांस और स्पेन से सहायता प्राप्त की जाय। यदि स्पेन और फ्रांस की सक्रिय सहायता मिल जाती तो जर्मनी की जल-शक्ति तथा भूमध्यसागर में उसकी स्थिति दोनों ही दृष्टि से उसे लाभ पहुंच सकता। परन्तु यह संभावना पूरी होती नहीं दीखती। सम्भव है कि स्पेन को जर्मनी जिब्राल्टर और टैनजियर पर अधिकार कराने का आश्वासन दे कर, जर्मन सेनाओं को स्पेन में से गुजरने की स्वीकृति प्राप्त कर ले। यदि यह हो सका तो जर्मनी भूमध्यसागर का पश्चिमी द्वार ब्रिटेन के लिये बन्द कर सकेगा और पश्चिमी अफरीका में गिनी की खाड़ी तक पहुंच कर दक्षिण अमेरिका से व्यापारिक और आर्थिक सम्बन्ध बना सकेगा। इस से इंगलैंड की भूमि भूमध्यसागर से भी अलग हो जायेगी और जर्मनी का आर्थिक-जीवन भी नाकेबन्दी को तोड़ कर चैन की सांस ले सकेगा। जैसा कि हमने ऊपर देखा कि इसके लिये फ्रांस और स्पेन का सहयोग आवश्यक है। परन्तु अब तक प्राप्त समाचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्पेन और फ्रांस की सरकारें इस के लिये तैयार नहीं हैं।

इटली के पतन की सम्भावना को रोकने के लिये जर्मनी के पास दूसरा रास्ता यह था कि वह इटली में अपनी सेनायें भेज कर भूमध्यसागर के रणक्षेत्र पर अपनी स्थिति को मजबूत करे। पिछले दिनों में मिले समाचारों से इस विकल्प की पुष्टि भी हुई है।

स्थलमार्ग द्वारा मिश्र पर आक्रमण तथा जिब्राल्टर की नाकाबन्दी की सफलता जहां उपर्युक्त सम्भावनाओं पर आश्रित

है, वहां यह ध्यान रखना चाहिये कि जर्मनी की शक्ति की मर्यादा है। इस समय जर्मनी सम्पूर्ण यूरोप पर छाया हुआ है और अधिकांश यूरोपियन पश्चिमी समुद्री तट उसके अधिकार में है। इस सारे भूमिभाग का नियन्त्रण करने के लिये बहुत बड़ी जर्मन-सेना की जरूरत है। फ्रांस जैसी महाशक्ति भी फिर से जर्मनी के विरोध में खड़ी हो सकती है। इटली की ताकत का दिवाला निकल ही रहा है और पूर्व में रूस की सहायता और तटस्थता पर भी सदा विश्वास नहीं किया जा सकता। रूस का पुराना राजनीतिक इतिहास तथा उसके कर्ताधर्ता स्टालिन की महत्वाकांक्षा एक हौवे के रूप में सदा पूरब में खड़ी है।

मल्लयुद्ध के दोनों पहलवान समरांगण में खूब जूझ रहे हैं। अभी तक यह लड़ाई दोनों के ही शरीरप्रान्तों से दूर है। जर्मनी अपने आप में शक्तिशाली होता हुआ भी अपने विरोधी ब्रिटेन से मैदान में अभी दो दो हाथ करने की हिम्मत नहीं रखता। दूसरी ओर ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सम्पूर्ण पृथ्वी में फैले अपने साम्राज्य को जन, धन, बल की सहायता से निरन्तर शक्तिशाली होकर, अपने दुश्मन को उसके अपने घर में ही बन्द कर, हथियार रखने के लिये लाचार कर रहा है।

ब्रिटेन और जर्मनी की इस लड़ाई का असली भविष्य चाहे जो भी हो, परन्तु यह निश्चय है कि इस द्वितीय यूरोपियन-महायुद्ध के फैसले में भूमध्यसागर की रणस्थली भी अपना निश्चित निर्णायक स्थान रक्खेगी।



हिन्दी का कुछ अनमोल साहित्य

अपराधी कौन ? श्री प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति की लेखनी से लिखा गया क्रान्तिकारी उपन्यास। मूल्य १॥) पृष्ठ संख्या ४२०।

पंडित जवाहरलाल नेहरू (द्वितीय संस्करण) प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखी गई भारत के युवक-हृदय-सम्राट् की प्रामाणिक जीवनी। मूल्य केवल ॥)। पृष्ठ संख्या १२५।

श्री सुभाषचन्द्र बोस (द्वितीय संस्करण) लेखक-श्री रमेशचन्द्र आर्य। पृष्ठ संख्या ११०। मूल्य केवल ।=)।

स्वामी श्रद्धानन्द श्री सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा लिखी गई अमर शहीद की सचित्र जीवनी। मूल्य ३॥), रियायती मूल्य १॥।)। पृष्ठ संख्या ६२५।

चीन का स्वाधीनता युद्ध लेखक-पं० कृष्णचन्द्र विद्यालंकार। मूल्य १)। पृष्ठ संख्या २००।

मौ० अब्बुलकलाम आज़ाद वर्तमान राष्ट्रपति की जीवनी। लेखक-श्री रमेशचन्द्र आर्य। मूल्य ।=) पृष्ठ संख्या ७६।

मैं भूल न सकूं हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिकों और लेखकों की कभी न भूलने वाली आपबीती, उन्हीं की ज़बानी मूल्य १)। पृष्ठ संख्या १८

भूमध्यसागर का रणक्षेत्र आपके हाथों में है।

विजय पुस्तक भण्डार,

श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।